महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचितम्

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

(पण्डित पछाड़)

इसमें अशुद्धिघटित दस पद्यों और एक सौ ग्यारह वाक्यों में व्याकरण पढ़े-लिखे लोगों से भी हो जानेवाली भूलों का संकलन किया गया है। प्रत्येक पद्य या वाक्य में एक-दो अशुद्धियाँ हैं, जो साधारणतया पकड़ में नहीं आतीं। यह पुस्तक व्याकरणशास्त्र के अभ्यास और उसकी मार्मिक त्रुटियों के ज्ञान का अनुपम साधन है और परीक्षार्थियों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसकी उपादेयता से आकृष्ट होकर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने इसे उत्तर-मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत किया है। विद्यार्थियों को चाहिए कि अशुद्धियों को स्वयं खोजने का प्रयत्न करें और स्वयं न खोज सकने पर हिन्दी व्याख्या या गुरुजनों की सहायता लें।

—सम्पादक

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचितम्

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

(पण्डित पञ्चार)

तथा

प्राचीनकविकृतकूटकाव्यरूपम्

व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्

केदारनाथ मिश्र एम्० ए०, पी एच्० डी० (अ० व०)

कृतहिन्दीव्याख्यासहितम्

सम्पादकः संशोधकश्च

केदारनाथ मिश्रः एम्० ए०, पी एच्० डी० (अ० व०)

प्रकाशकः

श्रीकृष्णकुमार व्यासः

व्यासपुस्तकालयः

डी० १८।२४ मानमन्दिर, काशी

षष्ठं संस्करणम्
वि० सं० २०१८

मूल्यम्—द्वादशाणकाः
७५ नये पैसे

संपादकीय

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, स्वर्गीय महाकवि पं० अम्बिकादत्त व्यास की युवावस्था को पण्डितपछाड़ रचना है। उन्होंने दस ग्यारह वर्ष की अल्प वय में ही हिन्दी और संस्कृत ग्रन्थों की रचना करना, पत्र पत्रिकाओं में लेख लिखना और सभाओं में भाषण देना प्रारम्भ कर दिया था तथा इस पुस्तक के रचनाकाल वि० सं० १९३७ तक पर्याप्त, योग्यता अनुभव और प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। इस समय तक वे छोटे बड़े सोलह ग्रन्थ लिख चुके थे, चौबीस मिनट में सौ श्लोक बनाने (घटिकाशतक) और पद्यबद्ध भाषण करने के अभ्यस्त हो चुके थे, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस से साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त कर चुके थे और बाईस वसन्त देख चुके थे। पुस्तक के प्रत्येक वाक्य पर उनके गम्भीर अध्ययन और प्रौढ़ पाण्डित्य की छाप स्पष्ट है।

संस्कृत के पण्डित पदों के शुद्ध प्रयोग पर अत्यधिक बल देते आये हैं और व्याकरणशास्त्र का मुख्य प्रयोजन शब्दापशब्दविवेक या शुद्ध पदों के सम्यक् प्रयोग का ज्ञान प्राप्त करना ही मानते आये हैं। अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं की परीक्षाओं में बहुत पहले से ही ऐसे प्रश्न आते हैं जिन में अशुद्धिघटित वाक्यों को शुद्ध करने को कहा जाता है। अब ऐसे ही प्रश्न वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की उत्तर मध्यमा परीक्षा के 'व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्' नामक प्रश्नपत्र और अन्य संस्कृत परीक्षाओं में भी पूछे जाने लगे हैं। व्यास जी ने आज से ८० वर्ष पूर्व ही संस्कृत साहित्य में इस आवश्यकता का अनुभव कर गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् की रचना की थी। इसमें अशुद्धिघटित दस पद्यों और एक सौ ग्यारह वाक्यों में व्याकरण पढ़े लिखे लोगों से भी हो जाने वाली भूलों का संकलन किया गया है। प्रत्येक

पद्य या वाक्य में एक दो अशुद्धियाँ है जो साधारणतया पकड़ में नहीं आतीं। यह पुस्तक व्याकरणशास्त्र के अभ्यास और उसकी मार्मिक त्रुटियों के ज्ञान का अनुपम साधन है और परीक्षार्थियों के लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसकी उपादेयता से आकृष्ट होकर इसी के अनुकरण पर बाद में अन्य पुस्तकें भी लिखी गईं पर उन्होंने स्वाभाविकात्कृत्रिमसन्यदेव की उक्ति को ही चरितार्थ किया। उनसे इसकी महत्ता और प्रतिष्ठा घटने के बजाय और बढ़ी ही है।

व्यास जी की पण्डित पछार नाम से निकली इस कृति की सारी अशुद्धियों को खोज कर उनकी व्याख्या कर सकना किसी वैयाकरणमूर्धन्य से ही सम्भव था। संस्कृत का साधारण ज्ञान रखने वाला इन अशुद्धियों को खोज निकालना तो दूर, समझ भी नहीं सकता। सौभाग्य से व्यास जी के पौत्र श्री कृष्णकुमार व्यास जी के आग्रह पर इस अनन्यशक्य कार्य को सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्री मन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिकसार्वभौम गोस्वामी श्री दामोदरलाल जी ने अपने हाथ में लिया और गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् के पञ्चम संस्करण में श्री जितेन्द्रियाचार्य जी अशुद्धियों की व्याख्या प्रस्तुत कर सके। हमने इस संस्करण में उसका पूरा उपयोग किया है एतदर्थ हम उनके आभारी हैं। प्रस्तुत संस्करण में बहुत सी नई अशुद्धियाँ खोज निकाली गई हैं और उन की विस्तृत व्याख्या की गई है। इस कार्य में हम समय समय पर आचार्य रामप्रसाद त्रिपाठी के सत्परामर्शों से लाभ उठाते रहे हैं। उनके कृतज्ञतापाश में बँधे रहने में ही हम अपने को धन्य समझते हैं।

पुस्तक को अधिक से अधिक छात्रोपयोगी और सरल बनाने की दृष्टि से इस संस्करण में पाणिनि की अष्टाध्यायी, सिद्धान्तकौमुदी और अमरकोष के आधार पर प्रत्येक अशुद्धि की विस्तृत व्याख्या कर दी गई है और उसके स्थान पर उचित प्रयोग भी दे दिया गया है। व्याख्या राष्ट्रभाषा में लिखी गई है जिससे अधिक से अधिक छात्र लाभ उठा सकें। छात्रों की सुविधा के लिये सूत्र और वार्तिक आदि काले अक्षरों में छापे गये हैं और

उनके अङ्क भी दे दिये गये हैं। पिछले संस्करण में हुई भूलों को सुधार दिया गया है और उसमें जो सूत्र, वार्तिक आदि अशुद्ध छप गए थे उन्हें शुद्ध कर दिया गया है।

पुस्तक के व्युत्पत्तिप्रदर्शनम् नामक दूसरे भाग में सुभाषित भाण्डागार, विदग्धमुखमण्डन, कविकण्ठाभरण और चम्पूभारत आदि ग्रन्थों से संकलित कुछ कूट पद्य दिये गये हैं। काव्यशास्त्र के मर्मज्ञों ने रस का प्रतिबन्धक होने के कारण कूटकाव्य को दुष्टकाव्य भले ही माना हो, प्रतिभा के विकास और व्युत्पत्तिप्रदर्शन की दृष्टि से ये महत्त्वपूर्ण अवश्य हैं। सरल हिन्दी अनुवाद और विस्तृत व्याख्या द्वारा इन कूटों की ग्रन्थियाँ सुलझाकर इन्हें बहुत सरल और उपादेय बना दिया गया है। हिन्दी व्याख्या में हमने श्री जितेन्द्रियाचार्य जी की संस्कृत व्याख्या का उपयोग किया है, इसके लिये हम उनके आभारी हैं।

पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने का सारा श्रेय मेरी संस्कृतानुरागिणी धर्मपत्नी श्रीमती स्नेहलता मिश्र एम्० ए० (अ० व०) को है। इस परिश्रम के लिये वे धन्यवाद की पात्र हैं।

आशा है शुद्धाशुद्धिप्रदर्शनम् का यह सर्वाङ्ग सुन्दर संस्करण परीक्षार्थियों के लिये अत्युपयोगी सिद्ध होगा और संस्कृत के अधिकाधिक छात्र और विद्वान इसे और भी अधिक अपनाकर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे।

हिन्दूविश्वविद्यालय
जून १९६१

विद्वद्वशंवदः
केदार नाथ मिश्रः

नोट—शुद्धाशुद्धिप्रदर्शनम् के इस छठे संस्करण में सूत्रों और वार्तिकों को उद्धृत करने में म० म० गिरिधर शर्मा और म० म० परमेश्वरानन्द शर्मा द्वारा सम्पादित तथा मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित वैयाकरण-सिद्धान्त-कौमुदी के प्रथम संस्करण का और कोष उद्धृत करने में वासुदेव शास्त्री पणशीकर द्वारा सम्पादित तथा निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित अमरकोष के १८९६ ई० के संस्करण का उपयोग किया गया है।

हिन्दी व्याख्या में आये संकेत अ० को० का अर्थ अमरकोष और ए० को० का अर्थ एकाक्षरी कोष है।

सम्पादक
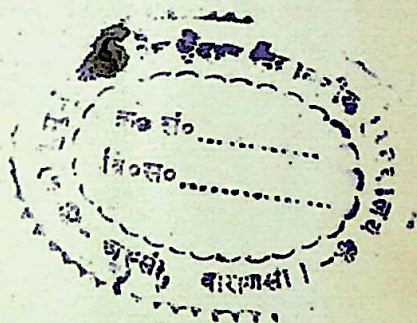
विहारभूषण, भारतभूषण, भारतरत्न, भारतभास्कर, घटिकाशतक, शतावधान, धर्माचार्य, महामहोपदेशक, सुकवि, साहित्याचार्य—

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन के प्रणेता

पं० अम्बिकादत्त व्यास

(संक्षिप्त परिचय)

पिता—पं० दुर्गादत्त गौड़ 'दत्त', जन्म—चैत्र शुक्ल अष्टमी वि० सं० १९१५ को जयपुर के सिलावटोंके मुहल्ले (ननिहाल) में। अक्षरारम्भ—वि० सं० १९२० काशी में।

१९२५ प्रस्तार दीपक (सर्वप्रथम रचना) का प्रणयन प्रारंभ। १९२५–१९२७, संस्कृत में गणेशशतक और हिन्दी में शिवविवाह की रचना, सरस्वतीतन्त्रकाव्य, समस्यापूर्ति आदि का अभ्यास। १९२८, विवाह।

१९३१ माँ का देहावसान। १९३२ गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस में प्रवेश, अंग्रेजी और बंगला का अध्ययन, श्रीमद्भागवतादि की कथा, भाषण और शास्त्रार्थ का अभ्यास। १९३४ सांख्यसागरसुधा, पातञ्जलप्रतिबिम्ब और सामवतम् की रचना प्रारम्भ, ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के लेखाध्यक्ष, पण्डितसभा में स्वामी विशुद्धानन्द से 'व्यास' उपाधिकी प्राप्ति।

१९३५–१९३६ तीन हिन्दी और दो संस्कृत पुस्तकों की रचना। १९३७ पिता का देहावसान। सामवतम् नाटक की पूर्ति। गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, समस्यापूर्तिसर्वस्व तथा दो हिन्दी पुस्तकों की रचना, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस से साहित्याचार्य उपाधि की प्राप्ति। १९३८ काशी ब्रह्मामृत-वर्षिणी सभा से 'घटिकाशतक' उपाधि की प्राप्ति। १९३९ द्रव्यस्तोत्र तथा हिन्दी की चार पुस्तकोंका प्रणयन। १९४० मधुवनी संस्कृत स्कूल के अध्यक्ष, धार्मिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ, पीयूषप्रवाह पत्रिका का सम्पादन, और चार हिन्दी पुस्तकों की रचना। १९४१–१९४२ में दुःख-द्रुमकुठारः तथा छः हिन्दी पुस्तकों (दयानन्दमतमूलोच्छेदादि) की रचना।

१९४३ मधुबनी से इस्तीफा, मुजफ्फरपुर जिला स्कूलके अध्यक्ष, धर्मसभा, 'सुनीतिसंचारिणी सभा' की स्थापना, सुकवि सतसई आदि सात पुस्तकों की रचना। १९४४ भागलपुर जिला स्कूल के अध्यक्ष 'बिहार संस्कृत संजीवन' की स्थापना, रत्नाष्टक और कथाकुसुम तथा हिन्दी में बिहारी-बिहार, मूर्तिपूजा आदि ग्रन्थों की रचना। १९४५ मिथिलानरेश से सम्मानप्राप्ति, सनातनधर्म महामण्डल दिल्ली से स्वर्णपदक सहित 'बिहारभूषण' उपाधि-प्राप्ति, शिवराजविजय की रचना प्रारम्भ, अन्य छः हिन्दी-संस्कृत पुस्तकों की रचना। १९४६ से १९४७ तक छः पुस्तकों की रचना। १९५० शिवराज-विजय की पूर्ति, गद्यमीमांसा, सहस्रनाम रामायण तथा पाँच हिन्दी पुस्तकों की रचना। १९५१ अवतारमीमांसा आदि चार हिन्दी ग्रन्थों की रचना तथा कांकरोली के वल्लभकुलावतंस गोस्वामी श्री बालकृष्णलाल जी महाराज से स्वर्णपदक सहित 'भारतरत्न' उपाधि की प्राप्ति। १९५२-१९५४ छोटी-छोटी पाँच पुस्तकों का प्रणयन। इस प्रकार १९२५ से १९५४ तक, ७८ ग्रन्थों की रचना, 'महाकवि' सम्मान की प्राप्ति।

अयोध्यानरेश से स्वर्णपदक सहित 'शतावधान' उपाधि की प्राप्ति, बम्बई की महासभा में वल्लभकुलावतंस गोस्वामी घनश्यामलाल से स्वर्णपदक सहित 'भारतभूषण' उपाधि की प्राप्ति।

देहावसान—मार्गशीर्ष त्रयोदशी, सोमवार वि० सं० १९५

नोट—व्यासजी के कुछ ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं शेष उनके पौ श्री कृष्णकुमार व्यास (व्यास पुस्तकालय डी० १६।१४ मानमन्दिर, काशी से मिल सकते हैं।

निवेदन

ऐसे ऐसे लेख तो अनेक दीख पड़ते हैं जिनमें किसी में क्रिया गुप्त हो किसी में कर्म गुप्त हो, पर ऐसे लेख नहीं देखने में आते जिनमें कुछ अशुद्धि हो और गुप्त हो। सच पूछिये तो क्रिया गुप्तादि उतनी व्युत्पत्ति की अपेक्षा नहीं रखते जितनी अशुद्धि गुप्त! जिसको उणादि और धातु के विभिन्न प्रयोगों में अभ्यास है, वह क्रियागुप्तादि का मर्म समझ लेगा, पर अशुद्धिगुप्त को समझने के लिए तो सच्ची व्युत्पत्ति चाहिये। फिर यह भी है कि क्रिया आदि न बूझ सकने से पाण्डित्य की उतनी हानि नहीं है जितनी अशुद्ध बोलने और अशुद्ध को शुद्ध समझने में है। इन दिनों भी स्थान-स्थान में सहस्रों ही छात्र पढ़ते हैं और उनके अध्यापक लोग फांकी और खरौं के मारे उनके पेट में पानी-पानी कर देते हैं, पर जिस सूत्र पर छः घण्टे शास्त्रार्थ करने का सामर्थ्य उनको हो जाता है, उसी सूत्र के उदाहरण प्रायः स्वयं भी अशुद्ध बोलते हैं और दूसरे अशुद्ध बोलें तब तो खटके ही क्यों? कुछ तो संस्कृत भाषा ही ऐसी दुरूह है कि बड़े बड़ों को भी भरमा देती है, पर प्रधान बात यही है कि इन दिनों पठन-पाठन ऐसा नष्ट हो रहा है कि जिन छात्रों की जिह्वा पर भाष्यान्त व्याकरण नाचता है वे भी 'क्या खाके आये हैं' यह भी सुन्दर शुद्ध संस्कृत में नहीं कह सकते और अपने मित्र को चार पंक्ति में भी लिख कर अपना अभिप्राय नहीं प्रकट कर सकते। जो कुछ हो, इस छोटे से प्रबन्ध में संस्कृत भाषा के कुछ वाक्य हैं और प्रत्येक में कुछ अशुद्धियाँ हैं, छात्रों को उचित है कि जहाँ तक हो

सके अपने से उन अशुद्धियों को ढूँढ़ें, नहीं तो अपने गुरुजी से पूछें, और गुरु लोगों को भी उचित है कि छात्रों से व्युत्पत्ति सम्बन्धी अभ्यास कराते रहें।

वैयाकरण लोग कटकटा के कमर बाँधें तो संसार के सब अपशब्दों को भी शुद्ध कर ले सकते हैं जैसे कहावत प्रसिद्ध है कि "उणादि का प्रत्यय आया डलक, डियाँ, डोलना, मा धातु से सिद्ध हुआ मलक, मियाँ मोलना।" पर हमें विश्वास है कि हमारे इष्ट मित्र लोग इस अजीर्ण पण्डिताई का प्रच्छदंन न करेंगे और हमारे तात्पर्य पर ध्यान देंगे।

यह क्षुद्र ग्रन्थ एक बार संवत् १६३७ में छपा था, छात्र और पण्डितों के आग्रह से फिर प्रकाशित करना पड़ा।

वैशाख ३०, सं० १९५०
भागलपुर

विद्वज्जन किङ्कर
अम्बिकादत्त व्यास

महाकवि-

श्रीमदम्बिकादत्तव्यासप्रणीतम्

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

श्लोकाः

त्वयि त्रातरि भो कृष्ण ! दुःखं नोऽत्रास्ति किञ्चन ।
इयं सह प्रणतिना कृता ते चरणेऽञ्जलिः ॥ १ ॥

ते पद्मभूवाहनवाहितायाः पद्मासनाबद्धशरीरवल्याः ।
श्रीपद्मनाभस्य नमामि पत्न्याः पद्मासपत्न्याः प्रियपादपद्मे ॥ १ ॥
प्राग्वेदान्तविरुद्धमेव सुगतैराभाषितं दर्शनम् ।
मन्वानैर्बुधमानिभिर्मततरून् संस्थापितान्मूलतः ।
स्वीयालोचनवात्यया प्रबलया योन्मूलयामास ताम् ।
श्रीमच्चन्द्रधरस्य तर्कनिशितां प्रज्ञां नमामो गुरोः ॥ २ ॥
अशुद्धीः दर्शयत्यत्र गुप्ताशुद्धिप्रदर्शने ।
मिश्रः केदारनाथोऽयं छात्रलाभाय भाषया ॥ ३ ॥

१ प्रतिषेधार्थक नो शब्द चादिगण में पठित होने से निपातसंज्ञक है, अतः ओत् १ । १ । १५ सूत्र से इसकी प्रगृह्यसंज्ञा हो जायगी और प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६ । १ । १२५ सूत्र से प्रकृतिभाव होकर पूर्वरूप सन्धि के अभाव में नो अत्रास्ति यह शुद्ध रूप होगा ।

हितैषां जगतो धत्सि लक्ष्मी ते पादपीठिका ।
नित्यस्ते मे च सम्बन्धो पिता त्वं ते सुतोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥

अञ्जलि शब्द पुंलिङ्ग (तौ युतावञ्जलिः पुमान् अमरकोष ६४६) है, अतः या विशेषेषु दृश्यन्ते लिङ्गसंख्याविभक्तयः ।

प्रायस्ता एव कर्तव्याः समानार्थे विशेषणे ॥ इस नियम के अनुसार इयम् के स्थान पर अयम् और कृता के स्थान पर कृतः होना चाहिये। प्रणति शब्द क्तिन्नन्त होने से (स्त्रियां क्तिन् ३ । ३ । ९४) स्त्रीलिङ्ग है, उसका तृतीया एकवचन का रूप प्रणत्या होगा, और शुद्ध प्रयोग अयं सह प्रणत्या कृतः होगा ॥ १ ॥

२ इच्छा ३ । ३ । १०१ सूत्र से निपातन होकर हितेच्छां शुद्ध रूप होगा।

धा धातु से आत्मनेपद में लट् लकार के मध्यमपुरुष एकवचन में धत्से यह शुद्ध रूप होगा ।

लक्ष्मी शब्द अङ्यन्त है अतः सु का लोप न होगा, अवीतन्त्री तरीलक्ष्मीधीह्रीश्रीणामुणादिषु । सप्तस्त्रीलिङ्गशब्दानां न सु-लोपः कदाचन ॥ अतः लक्ष्मीस्ते यह शुद्ध रूप होगा ।

कृदिकारादक्तिनः (ग ५०) वार्तिक से विकल्प में ङीप् होकर ङ्याप् प्रातिपदिकात्…… ६।१।६८ से सु का लोप होकर लक्ष्मी रूप भी होता है। इसीलिये कहा है, वातप्रमी श्री लक्ष्मीति पक्षे ङ्यन्ता सुसाधवः। द्विरूपकोष में भी लक्ष्मीर्लक्ष्मी हरिप्रिया दोनों रूपों को मान्यता दी गई है ।

तव और मम को ते और मे आदेश च के योग में नहीं होंगे (न चवाहाऽहैवयुक्ते ८ । १ । २४) अतः यहाँ तव और मम ही होगा ते और मे नहीं ।

पकार हश् प्रत्याहार में नहीं आता अतः हशि च ६ । १ । ११४ सूत्र की प्रवृत्ति न होने पर उत्व के अभाव में विसर्गान्त शब्द सम्बन्धः ही शुद्ध रूप होगा ॥ २ ॥

तन्त्री करे यस्य सस्त्वां सदा गायति नारदः।
ऋषिभिर्महिमा दिव्या ते सदा ब्रूयते मुदा॥ ३॥
यस्य ध्वजायां गरुडो भुजायां स्वर्णकङ्कणः।
कण्ठे च कौस्तुभं भाति स मय्यनुगृहिष्यति॥ ४॥

---

३ तन्त्री शब्द अङ्यन्त है अतः सु का लोप न होगा और विसर्गान्त तन्त्रीः रूप ही शुद्ध होगा।

सः के बाद हलादि त्वां शब्द के होने से एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६। १। १३२ सूत्र से सु का लोप होकर स त्वां यह शुद्ध रूप होगा।

महिमन् शब्द इमनिच् प्रत्ययान्त (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५। १। १२२) पुंलिङ्ग है, अतः उसका विशेषण भी पुंलिङ्ग होगा और शुद्ध रूप दिव्यः होगा।

अनुदात्तं सर्वमपादादौ ८। १। १८ सूत्र से पादादि में आने वाले तव के ते आदेश का निषेध होकर तव यह शुद्ध रूप होगा।

ब्रू धातु को आर्धधातुक में ब्रुवो वचिः २। ४। ५३ सूत्र से वचि आदेश हो जायगा और शुद्ध रूप उच्यते होगा॥ ३॥

४ ध्वज शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं है (केतनं ध्वजमस्त्रियाम् अमरकोष ८६५) अतः ध्वजायां अशुद्ध है, सप्तमी एकवचन का रूप ध्वजे होगा।

भुज शब्द पुंलिङ्ग है (भुजबाहू प्रवेष्टो दोः अमरकोष ६४४) अतः सप्तमी एकवचन का रूप भुजे होगा।

कङ्कण शब्द नपुंसकलिङ्ग है (कङ्कणं करभूषणम् अमरकोष ६७२) अतः शुद्ध पाठ स्वर्णकङ्कणम् होगा।

कौस्तुभ शब्द पुंलिङ्ग है (कौस्तुभो मणिः अमर कोष ३१) अतः शुद्ध पाठ कौस्तुभो भाति होगा।

त्वां याचितं मया यद्यद् देहि तन्मां लघु प्रभो।
हे नाथ ! मेऽखिलान् पापान् क्षमस्व जगदीश्वर ॥ ५ ॥
जगत्यस्मिन् महद्घोरे गुरौ दुःखप्रदातरि।
निरालम्बोऽस्मि पतितः क्वास्ति ते चरणं तरिः ॥ ६ ॥

ग्रहोऽलिटि दीर्घः ७। २। ३७ सूत्र से हि के दीर्घ हो जाने पर सम्प्रसारण के अभाव में अनुग्रहीष्यति यह शुद्ध रूप होगा ॥ ४ ॥

५ द्विकर्मक याच् धातु दुह्यादि धातुओं के अन्तर्गत आती है, अतः प्रत्यय अप्रधान कर्म में ही होगा और शुद्ध रूप 'त्वं याचितो मया' होगा। साथ ही सम्प्रदान का प्रसङ्ग होने से द्वितीया के स्थान पर चतुर्थी होगी और 'देहि तत् मह्यं लघु' यह शुद्ध रूप होगा। यहाँ 'नाथ' शब्द आमन्त्रितसंज्ञक है अतः 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यानवत्' ८।१।७२ से वह अविद्यमान के तुल्य हो जायगा, इस दशा में, 'मम' को होने वाले 'मे' आदेश का 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' ८।१।१८ से, (पादादि में होने के कारण) निषेध होकर मम यह शुद्ध रूप होगा। हे शब्द को पादादि में मानकर आदेशसिद्धि कर सकना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि वह भी सम्बोधन प्रथमान्त होने से आमन्त्रित, अतः अविद्यमानवत् ही है।

पाप शब्द नपुंसकलिङ्ग है (पापं किल्विषकल्मषम् अमरकोष १४५) अतः अखिलं पापम्, या अखिलानि पापानि पाठ शुद्ध होगा ॥ ५ ॥

६ आन्महत· समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६ सूत्र से आत्व होकर महाघोरे यह शुद्ध रूप होगा ॥ ६ ॥

त्वमेवात्र समागच्छ मा वा त्वन्निकटे नय।
अहं देव त एवास्मि दुःखसंघात्प्रमोचय ॥ ७॥
न कोऽपि मित्रस्त्वदृते यो गापयति नारदम्।
त्वमेव प्रीतिपात्रोऽसि मा भैः कस्ते विना वदेत् ॥ ८॥

---

७ पादादि में होने वाले माम् के मा आदेश का अनुदात्तं सर्वमपादादौ ८।१।१८ सूत्र से निषेध होकर माम् यह शुद्ध रूप होगा।

एव के योग में तव को ते आदेश नहीं होता (न चवाहाऽहैव-युक्ते ८।१।२४) अतः तवैवास्मि यह शुद्ध रूप होगा ॥ ७ ॥

८ सुहृद्वाची मित्र शब्द नपुंसकलिङ्ग है (मित्रं सखा सुहृत् अमरकोष ७७७) अतः मित्रम् पाठ होना चाहिये। मित्रम् का परामर्शक होने से कोऽपि के स्थान पर किमपि होना चाहिये। देवः या जनः का अध्याहार करें तो कोऽपि पाठ भी शुद्ध होगा।

गै धातु अकर्मक नहीं है, क्योंकि इसके गीत आदि कर्म सम्भव हैं (यथा, गायन्ति देवाः किल गीतकानि), साथ ही यहाँ गीतात्मक या शब्दात्मक कर्म की विवक्षा न होने से यह शब्दकर्मक भी नहीं है, अतः नारद शब्द से, अनुक्त कर्त्ता में तृतीया ही होना उचित है। यदि शब्द या गीत रूप कर्म का अध्याहार करें तो द्वितीयान्त भी साधु हो सकता है।

भाजनवाचक और योग्यवाचक पात्र शब्द नपुंसकलिङ्ग है (योग्यभाजनयोः पात्रम् अमरकोष १३८७) अतः प्रीतिपात्रं शुद्ध रूप होगा।

लुङ् में विहित सिच् का लोप न होने के कारण, और (माङ् का योग होने से) अडागम के अभाव में, भैषीः यह शुद्ध रूप होगा।

विना के योग में द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी का ही विधान है, अतः ते विना प्रयोग असाधु है ॥ ८ ॥

जाजप्यन्ते नाम तव सर्वोपनिषदः सदा।
स्मृतीतिहासास्तेष्वेव चाचर्यन्ते बुधोदिताः ॥ ९ ॥
पद्मगन्धं मुखं दृष्ट्वा बाहू चाजानुलम्बिते।
तवैव शरणं यामि दयस्व यदि रोचते ॥ १० ॥

---

९ लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ३।१।२४ सूत्र से लुपादि धातुओं को होने वाला यङ् केवल निन्दार्थ में ही होता है, प्रकृत पद्य में उपनिषत्कर्तृक भगवन्नामकर्मक जप के आदरपूर्वक होने से, (निन्दा का प्रसङ्ग न होने से, उक्त सूत्र की प्रवृत्ति न होगी, अतः) यङ् के अभाव में भृशं जपन्ति यही शुद्ध रूप होगा।

एकवचन नाम के लिये प्रयुक्त सर्वनाम तत् का बहुवचन में प्रयोग अशुद्ध है, शुद्ध रूप तस्मिन्नेव होगा।

चाचर्यन्ते प्रयोग भी अशुद्ध है। यङ् प्रत्ययान्त चर् धातु से, गर्हितं चरन्ति के अर्थ में, चञ्चूर्यन्ते यह रूप बनता है। चरफलोश्च ७।४।८७ सूत्र से अभ्यास को नुगागम और उत्परस्यातः ७।४।८८ से उत्तरखण्डावयव अकार को उकार आदेश होकर चञ्चूर्यन्ते रूप निष्पन्न होता है, पर गर्हितं चरन्ति का भाव न होने से यहाँ चञ्चूर्यन्ते प्रयोग भी अशुद्ध है, अतः अतिशयेन चरन्ति पाठ उचित होगा ॥ ९ ॥

१० उपमान पूर्व में होने से गन्ध शब्द के उपमानाच्च ५।४।१३७ सूत्र से इकारान्त हो जाने पर, पद्मगन्धि यह शुद्ध रूप होगा।

बाहु शब्द पुंलिङ्ग है (भुजबाहू प्रवेष्टो दोः अमरकोष ६४४) अतः उसका विशेषण लम्बित भी पुंलिङ्ग होगा और द्वितीया द्विवचन में लम्बितौ यह शुद्ध रूप होगा ॥ १० ॥

अथ शुद्धाशुद्धिवाक्यानि

१ वाङ्मनोऽतीताय ब्रह्मणे नमः ।

२ वाक्स्तम्भनमन्त्रोऽस्माभिर्जाप्यः ।

३ स्त्रीपुंसोः स्नेह एव सर्वसुखेभ्यो विशिष्यते ।

४ सकुटुम्बाय ते स्वस्ति ।

५ यो राजा शत्रुं न विजगीषति स कातर इत्युच्यते ।

---

१ अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनुडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुव:.... इत्यादि ५ । ४ । ७७ सूत्र से, वाङ्मनस् के अच् प्रत्ययान्त हो जाने पर वाङ्मनसातीताय यह शुद्ध रूप होगा ।

२ जप् में उपधा अ है और उसके बाद पवर्ग का अक्षर प् है, अतः पोरदुपधात् ३ । १ । ९८ सूत्र से ण्यत् के अपवादस्वरूप यत् के हो जाने पर, वृद्धिविधान के अभाव में जप्यः यह शुद्ध रूप होगा ॥ २ ॥

३ अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंस....इत्यादि ५ । ४ । ७७ सूत्र से स्त्रीपुंस के अच् प्रत्ययान्त हो जाने पर, षष्ठी में स्त्रीपुंसयोः यह शुद्ध रूप होगा ॥ ३ ॥

४ सहस्य सः संज्ञायाम् ६ । ३ । ७८ सूत्र से सह को स आदेश हो जाता है, पर आशीर्वाद के प्रसङ्ग में सह शब्द अपने प्रकृत रूप में ही रहता है (प्रकृत्याशिषि ६ । ३ । ८३) उसे स आदेश नहीं होता, अतः शुद्ध वाक्य सहकुटुम्बाय ते स्वस्ति होगा ॥ ४ ॥

५ वि उपसर्गपूर्वक जि धातु के विपराभ्यां जेः १ । ३ । १९ सूत्र से आत्मनेपदी हो जाने पर, तथा पूर्ववत्सनः १ । ३ । ६२ सूत्र से सन्नन्त धातु के यथापूर्व आत्मनेपदी बने रहने पर विजिगीषते यह शुद्ध रूप होगा ॥ ५ ॥

६ नौ देहि पुस्तकमेतत् ।

७ एषा दशदिवसानन्तरं पुत्रं प्रसोष्यते ।

८ योऽद्य विहरति स एव तदापि अविहरत् ।

९ एतस्य भूषणं मुष्णीहीति मा वोचः ।

१० भवान् कदानीं यास्यति ? मया तु परश्वो गमिष्यते ।

---

६ आवाभ्याम् को अनुदात्त नौ आदेश वाक्य के आदि में नहीं होता (अनुदात्तं सर्वमपादादौ ८ । १ । १८) अतः यहाँ आवाभ्याम् ही शुद्ध रूप है ॥ ६ ॥

७ दशदिवस में द्विगु समास (संख्यापूर्वो द्विगुः २ । १ । ५२) है अतः द्विगोः ४ । १ । २१ सूत्र से ङीप् हो जाने पर दशदिवसी और सन्धि होने पर दशदिवस्यनन्तरम् यह शुद्ध रूप होगा ।

दशदिवसानन्तरं पद से अनद्यतन भविष्य विवक्षित है 'अनद्यतने लुट्' ३ । ३ । १५ सूत्र से लुट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का शुद्ध रूप प्रसोता या प्रसविता होगा लृट् का रूप प्रसोष्यते अशुद्ध है ॥ ७ ॥

८ अट् आगम धातु का अव्यवहित पूर्ववर्ती होगा और वि उपसर्ग अट् आगम के आगे जुड़ेगा, पीछे नहीं अतः व्यहरत् यह शुद्ध रूप होगा ॥ ८ ॥

९ हल् के बाद यदि श्ना हो और उसके बाद हि हो तो हलः श्नः शानज्झौ ३ । १ । ८ सूत्र से श्ना को शानच् आदेश हो जाता है । मुष् + श्ना + हि इस स्थिति में, हलः श्नः शानज्झौ सूत्र से श्ना को शानच् आदेश होकर अतो हेः ६ । ४ । १०५ सूत्र से हि का लोप हो जाने पर मुषाण यह शुद्ध रूप होगा ॥ ९ ॥

१० दानीं च ५ । ३ । १८ और तदो दा च ५ । ३ । १९ से होने वाला दानीं प्रत्यय इदम् और तद् शब्दों से ही होता है किम् से नहीं, अतः कदानीं प्रयोग अशुद्ध है, शुद्ध रूप कदा होगा ।

११ रे क्रोष्टः किमिति रोरवीषि ?

१२ चिरराज्ञाय लालनपालनतत्परौ मातृपितरौ को न सुस्मूर्षति ?

१३ युष्माकं गृहा जीर्णाः सन्ति अनयोर्गृहौ तु नूतनौ स्तः ।

१४ कैषाप्सरा नृत्यति गानसक्ता ?

गम् धातु से इट् आगम केवल परस्मैपद में ही होता है (गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८) आत्मने पद में लृट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में गंस्यते यह रूप होता है। पर यहाँ परश्वो पद से अनद्यतन भविष्य की विवक्षा होने से अनद्यतने लुट् ३।३।१५ सूत्र से लुट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप गन्ता होगा ॥ १० ॥

११ तृज्वत्क्रोष्टुः ७।१।९५ सूत्र में सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८ सूत्र की अनुवृत्ति आने से, तृज्वत्क्रोष्टुः सूत्र की प्रवृत्ति संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान में ही होती है, अतः क्रोष्टु शब्द के स्थान पर क्रोष्टृ शब्द का प्रयोग सम्बोधनेतर में ही होता है, सम्बोधन में नहीं। प्रकृत वाक्य में सम्बोधन का प्रसङ्ग होने से, उकारान्त क्रोष्टु शब्द का, ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८ से गुण होकर, क्रोष्टो यह शुद्ध रूप होगा, क्रोष्टः अशुद्ध है।

१२ योनिसम्बन्धवाची ऋदन्त मातृ शब्द के बाद ऋदन्त पितृ शब्द होने से द्वन्द्व समास में, आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ६।३।२५ से मातृ के ऋ को आनङ् आदेश होकर मातापितरौ यह शुद्ध रूप होगा। ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः १।३।५७ सूत्र से सन्नन्त स्मृ धातु आत्मनेपदी होगी और सुस्मूर्षते यह शुद्ध रूप होगा ॥ १२ ॥

१३ पुंलिङ्ग गृह शब्द सदैव बहुवचन होता है (गृहाः पुंसि च भूम्न्येव अमरकोष २२४) अतः गृहाः तु नूतनाः सन्ति यह शुद्ध रूप होगा, अथवा नपुंसक गृह शब्द से गृहे तु नूतने स्तः यह शुद्ध रूप होगा ॥ १३ ॥

१४ अप्सरस् शब्द स्त्रीलिङ्ग और नित्य बहुवचनान्त है (स्त्रियां बहुष्वप्सरसः अमरकोष ५८) अतः शुद्ध वाक्य यह होगा—का एता अप्सरसः नृत्यन्ति गानसक्ताः ॥ १४ ॥

१५ किमित्यस्या वधोः केशेषु मलीमसता विभाव्यते ?

१६ आर्यावर्ते स्त्रियः प्रायशः स्वपत्या समं बहिर्न पर्यटन्ति ।

१७ एते जम्बूफलानि विक्रीणन्ते ।

१८ भवानेतानि किमिति न परिक्रीणाति ?

१९ भवता पश्यताम्, पाठशालायां छात्राः पठन्ति ।

२० एते छात्रा विशदं संस्कृतबोधं बिभ्रन्ति ।

---

१५ नदीसंज्ञक वधू शब्द को आण् नद्याः ७।३।११२ से आडागम होकर षष्ठी एकवचन में वध्वाः यह शुद्ध रूप होगा ॥ १५ ॥

१६ समासयुक्त पति शब्द की पतिः समास एव १।४।८ से घि संज्ञा होकर आङो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२० से तृतीया एकवचन में आङ् को ना आदेश हो जाने पर स्वपतिना यह शुद्ध रूप होगा ।

१७ क्री के बाद आनेवाले झ को आत्मनेपदेष्वनतः ७।१।५ से अन्त का अपवादस्वरूप अत् आदेश हो जाने पर आत्मनेपद में प्रथमपुरुष बहुवचन में विक्रीणते यह शुद्ध रूप बनेगा ।

१८ परि उपसर्ग पूर्व में होने के कारण परिव्यवेभ्यः क्रियः १।३।१८ सूत्र से क्रीञ् धातु आत्मनेपदी हो जायगी और प्रथमपुरुष एकवचन में परिक्रीणीते यह शुद्ध रूप होगा ।

१९ पाघ्रादि....७।३।७८ सूत्र से, दृश् धातु के पश्य आदेश की प्राप्ति कर्तृवाच्य में ही होती है, यहाँ कर्मवाच्य में उसका प्रसंग न होने से दृश्यताम् यही शुद्ध रूप होगा ।

२० झि के झ को अदभ्यस्तात् ७।१।४ सूत्र से अत् आदेश होकर बिभ्रति यह शुद्ध रूप होगा ।

२१ सुतरां शास्त्राणि पाठं पाठं कः को न सुखमबिभ्रत् ।

२२ पटोलस्य फलं मूलं छदं च रोगमवहन्ति ।

२३ यस्तव गृहं परिष्करोति स एव मद्गृहमपि परिश्चकार ।

२४ स द्वौ श्लोकौ विरच्य प्रेषितवान् ।

२५ सूर्यः सदैवोष्णीभूतो भ्राम्यति ।

२६ सन्दिहानः समापृच्छन् शिष्यो गुरुणा बोधयितव्यः ।

---

२१ कस्कादिषु च ८।३।४८ से कस्को यह शुद्ध रूप होगा और अनद्यतने लङ् ३।२।१११ से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन का रूप अबिभः होगा ॥ २१ ॥

२२ छद शब्द पुंलिङ्ग है (छदः पुमान् अमरकोष ३६२) अतः छदः, और बहुवचन में अवघ्नन्ति यह शुद्ध रूप होगा ।

२३ संपरिभ्यां करोतौ भूषणे ६।१।१३७ से होने वाला सुट् आगम अभ्यास का परवर्ती होगा अतः परिचस्कार यह शुद्ध रूप होगा ॥२३॥

२४ वि उपसृष्ट चुरादि लघुपूर्व रच् धातु के परवर्ती णि को ल्यपि लघुपूर्वात् ६।४।५६ सूत्र से (पर में ल्यप् होने के कारण) अय् आदेश होकर विरचय्य यह शुद्ध रूप होगा ॥ २४ ॥

२५ सूर्य के नित्य उष्ण होने के कारण अभूततद्भाव का प्रसङ्ग न होने से कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ५।४।५० सूत्र की प्रवृत्ति न होगी, और च्वि के अभाव में अस्य च्वौ ७।४।३२ की प्रवृत्ति न होगी, अतः अकार का ईकार न होगा और सदैवोष्णीभूतः न होकर शुद्ध रूप सदैवोष्णतः ही रहेगा ॥ २५ ॥

२६ आङ् उपसर्ग पूर्व में होने से पृच्छ् धातु के आङि नुप्रच्छ्योः ६०६ इस वार्तिक से आत्मनेपदी हो जाने पर शानच् होने पर, समापृच्छमानः यह शुद्ध रूप होगा ॥ २६ ॥

२७ इदमस्मद् व्याचिख्यासितं विषयं पण्डिता विदाङ्कुर्वन्तु, मूर्खाः कथं विदाङ्करिष्यन्ति।

२८ दिने सूर्यः प्रकाशकर्त्ता रात्रौ चाग्निसोमौ।

२९ एष महिषवच्छ्यामो गौः कूलं चिखण्डयिषति।

३० अस्मिन् बिले नकुलकुलानि विशन्ति, निविशन्ति च तस्मिन् मूषकाः।

३१ अस्मिन् कुशासनेऽध्युषितः सुप्रजो राजा धैर्यधारिधौरेयोऽस्ति।

---

२७ लोट् लकार का प्रसङ्ग न होने से विदाङ्करिष्यन्ति में विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३।१।४१ की प्राप्ति के अभाव में लृट् लकार का शुद्ध रूप वेदिष्यन्ति होगा ॥ २७ ॥

२८ अग्नि शब्द के उत्तरपद में सोम शब्द के होने से, देवताद्वन्द्व में ईदग्नेः सोमवरुणयोः ६।३।२७ सूत्र से ईद् आदेश, और अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ८।३।८२ सूत्र से सोम के सकार का षत्व होकर अग्नीषोमौ यह शुद्ध रूप होगा।

२९ वति प्रत्यय क्रियासादृश्य के द्योतक स्थलों पर होता है (तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५)। प्रकृतवाक्य में क्रियाजन्यसादृश्य का प्रसङ्ग न होने से वति प्रत्यय न होगा और महिष इव श्यामो गौः यह शुद्ध रूप होगा।

३० नि उपसर्ग पूर्व में होने के कारण, विश् धातु आत्मनेपदी (नेर्विशः १।३।१७) होगी और शुद्ध रूप निविशन्ते होगा।

३१ अधि उपसर्ग पूर्व में होने से वस् धातु के आधार कुशासन की उपान्वध्याङ्वसः १।४।४८ सूत्र से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति में शुद्ध रूप इदं कुशासनम् होगा।

प्रजा शब्द के पूर्व सु उपसर्ग होने से नित्यमसिच्प्रजामेधयोः ५।४।१२२ सूत्र से समासान्त असिच् होने पर सुप्रजाः यह शुद्ध रूप होगा।

३२ सुमेधसां सङ्गेन मन्दमेधसोऽपि पूज्या मेधाविनो भवन्ति।
३३ विरोचनमरीचिमाहात्म्यादन्धतमसं प्रणष्टम्।
३४ प्राचीनपुस्तकानि पठनपाठनाद्यगोचरीभूय लुप्तानि।

---

३२ नित्यमसिच्प्रजामेधयोः ५।४।१२२ से होने वाला नित्य 'असिच्' 'मेधा' शब्द के पूर्व "नञ्, दुर् और सु" उपसर्गों के होने पर (नञ्दुःसुभ्य इत्येव) ही होता है, अतः प्रकृत शब्द मन्दमेधसः के प्रसङ्ग में उसकी प्राप्ति के अभाव में मन्दमेधाः यही शुद्ध रूप होगा।

३३ नशेः षान्तस्य ८।४।३६ से णत्व का निषेध होकर प्रनष्टम् यह शुद्ध रूप होगा।

३४ अव्यय का अव्ययेतर के साथ समास साधारणतया निषिद्ध है और गोचर शब्द अजहल्लिङ्ग है अतः पठनपाठनाद्यगोचरा भूत्वा यह शुद्ध रूप होगा।

नञ् घटित रूप पठनपाठनाद्यगोचर में अभूततद्भाव अर्थात् पठनपाठनादिगोचर के पठनपाठनाद्यगोचर हो जाने का द्योतन नञ् से ही हो जाता है और उसके द्योतन के लिये च्वि का प्रयोग अनावश्यक है, जैसे अब्राह्मणो भवति में नञ् घटित रूप अब्राह्मणः में अभूततद्भाव अर्थात् ब्राह्मण के अब्राह्मण होमे का द्योतन नञ् से ही हो जाता है और उसके लिये च्वि प्रत्ययान्त रूप अब्राह्मणीभवति का प्रयोग उचित नहीं। अतः अब्राह्मणो भवति की ही भाँति पठनपाठनाद्यगोचरा भूत्वा यह व्यस्त प्रयोग ही उचित है।

३५ संश्रृणुमहे रावणसेनायां चतुर्मूर्द्धानस्त्रिमूर्धानश्च दैत्या आसन् ।
३६ एष केवलं रूपवद्भार्यः स तु रसिकभार्यः सरससुभाषितानन्देन यामिनीर्गमयति ।
३७ आवयोरेष विशेषो यत् त्वमकेशपत्नीकोऽहञ्च सुकेशपत्नीकोऽस्मि ।
३८ पिकशावः काकीभिः पाल्यते न तु काकीशावः पिकैः ।
३९ मूर्खाश्चतुःकृत्वः पञ्चकृत्वश्चोपदिष्टा अपि ग्रन्थाभिप्रायं नाधिगच्छन्ति ।

---

३५ त्रि शब्द के बाद मूर्धन् शब्द के होने से बहुव्रीहि समास में द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५।४।११५ इस सूत्र से समासान्त 'ष' होकर त्रिमूर्धाः यह शुद्ध रूप होगा ।

संश्रृणुमहे में आत्मनेपद असंगत है, पर यदि कथयद्भ्यः का अध्याहार कर लिया जाय तो श्रु धातु के अकर्मक हो जाने पर आत्मनेपद साधु हो जायगा ।

३६ रसिका शब्द की उपधा में ककार है अतः न कोपधायाः ६।३।३७ सूत्र से इसके पुंवद्भाव का निषेध हो जाने पर रसिकाभार्यः यह शुद्ध रूप होगा ।

३७ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग सुकेशी शब्द के स्वाङ्गवाचक होने से स्वाङ्गाच्चेतः ६।३।४० से, (स्त्रियाः पुंवत् ६।३।३४ से होनेवाले) पुंवद्भाव का निषेध हो जाने पर स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४।१।५४ से ङीप् होकर सुकेशीपत्नीकः यह शुद्ध रूप होगा ।

३८ काकी शब्द के कुक्कुट्यादिगण में और शाव शब्द के अण्डादिगण में आनें से कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु ३९३४ इस वार्तिक से काकी शब्द का पुंवद्भाव होकर काकशावः यह शुद्ध रूप होगा ।

३९ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ५।४।१८ सूत्र से कृत्वसुच् के अपवाद सुच् के हो जाने पर मूर्खाः चतुः पञ्चकृत्वश्चोपदिष्टाः यह शुद्ध रूप होगा ।

४० को न मधुरगानं शुश्रूषति श्रुतिमान् ?
४१ तस्याचरणं बोधश्च प्रशस्यौ स्तः।
४२ देवदत्तं प्रति शुश्रूषति यत् एषोऽनुजिज्ञासति।
४३ देवी खड्गेन शुम्भस्य शिरोऽप्रहरत्स च ममार।
४४ परमेतां दुराचारामवगत्यैतद्वितरितं न कोऽप्याददाति।
४५ कथमेष आदत्तबहुधन आस्यं व्याददाति ?

---

४० ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः १।३।५७ से सन्नन्त श्रु धातु के आत्मनेपदी हो जाने पर शुश्रूषते यह शुद्ध रूप होगा।

४१ आचरणम् शब्द नपुंसक है अतः बोधः शब्द के पुंलिङ्ग होने पर भी नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् १।२।६९ सूत्र से एक शेष होकर नपुंसक लिङ्ग के प्रथमान्त द्विवचन का रूप प्रशस्ये होगा।

४२ सन्नन्त श्रु धातु के ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः १।३।५७ सूत्र से आत्मनेपदी हो जाने पर शुश्रूषते यह शुद्ध रूप होगा।

४३ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१ सूत्र से होने वाला अट् आगम, धातु का अव्यवहित पूर्ववर्ती होगा, और प्र उपसर्ग उसके आगे जुड़ेगा पीछे नहीं अतः प्राहरत् यह शुद्ध रूप होगा।

४४ वितरितम् शब्द अशुद्ध है। श्र्युकः क्किति ७।२।११ से इट् का निषेध हो जाने पर वितीर्णम् शुद्ध रूप होगा।

आङो दोऽनास्यविहरणे १।३।२० सूत्र से परस्मैपदनिषेधपूर्वक आत्मनेपद का विधान होकर आदत्ते यह शुद्ध रूप होगा।

४५ आदत्तबहुधनः अशुद्ध है। अच उपसर्गात्तः ७।४।४७ सूत्र से (दकार का तकार हो जाने पर) आत्तबहुधनः यह शुद्ध रूप होगा।

४६ एष शुनको नित्यं भोजनसमये उपतिष्ठति ।

४७ अहोऽधुना राजा प्रतिष्ठासति शत्रून् विजिगीषया ।

४८ यथा भवान्स्वकेशांस्तैलादिभिः संस्करोति तथाहमपि निजकेशान् संश्चिकीर्षामि ।

४९ एष महिषीपदेन हतो न तथा व्यथितो यथा मृगीपदेन ताडितः ।

५० पादोपहतो विभीषणो रामं सेवयाम्बभूव ।

---

४६ उप उपसर्गपूर्वक स्था धातु के उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् ९१४ इस वार्तिक से आत्मनेपदी हो जाने पर उपतिष्ठते यह शुद्ध रूप होगा ।

४७ ओदन्त निपात अहो की ओत् १।१।१५ से प्रगृह्य-संज्ञा होकर प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५ से प्रकृतिभाव हो जाने पर सन्धि के अभाव में अहो अधुना यह शुद्ध रूप होगा ।

प्र उपसर्गपूर्वक स्था धातु के समप्रविभ्यः स्थः १ । ३ । २२ से आत्मनेपदी हो जाने पर पूर्ववत्सनः सूत्र से, सन्नन्त प्रतिष्ठासते शुद्ध रूप होगा ।

कर्तृकर्मणोः कृति २।३।६५ से षष्ठी होकर शत्रूणां यह शुद्ध रूप होगा ।

४८ संपरिभ्यां करोतौ भूषणे ६।१।१३७ से होने वाला सुट् आगम, अभ्यास के पीछे जुड़ेगा अतः संचिष्कीर्षामि यह शुद्ध रूप होगा ।

४९ मृगी शब्द कुक्कुट्यादिगण का और पद शब्द अण्डादिगण का है, अतः कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु ३९३४ इस वार्तिकसे पुंवद्भाव होकर मृगपदेन यह शुद्ध रूप होगा ।

५० पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु ६।३।५२ सूत्र से पाद को उपहत शब्द के पूर्ववर्ती होने से पद आदेश होकर पदोपहतो शुद्ध रूप होगा ।

---

५१ गोगोपगिलोऽघासुरः कृष्णेन व्यापादयाम्बभूवे ।

५२ काविमौ समानरूपावाजिगमिषतः ?

५३ स ऋक्सामनी अधीतवान्, एष तु ऋग्यजुषी ।

५४ विद्वत्सभायां धर्मोपदेशो भवति, रक्षःसभासु च पापोपदेशः ।

५५ किमिति नृपसभां निन्दसि, न कदाप्यवलोकिता त्वया राजसभा ?

५६ मेघा वर्षन्तु मेघा वर्षन्तु इति सम्प्रवदन्ति कृषीवलाः ।

---

५१ गिल-भिन्न गोप शब्द के बाद, गिल शब्द के आने से, गिलेऽगिलस्य ६।९७९ इस वार्तिक से मुम् होकर गोगोपङ्गिलः यह शुद्ध रूप होगा ।

५२ रूप शब्द के पहले आने वाले समान शब्द को ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु ६।३।८५ इस सूत्र से स आदेश होकर सरूपौ यह शुद्ध रूप होगा ।

५३ अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनुडुहर्क्साम''''इत्यादि ५।४।७७ सूत्र से अजन्तनिपातन होकर ऋक्सामे और ऋग्यजुषे शुद्ध रूप होंगे ।

५४ रक्षः शब्द पूर्व में होने से सभान्त तत्पुरुष के सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा २।४।२३ सूत्र से नपुंसक लिङ्ग हो जाने पर, सप्तमी में रक्षःसभेषु यह शुद्ध रूप होगा ।

५५ राजपर्याय नृप शब्द के पूर्व में होने से सभान्त तत्पुरुष के सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा २।४।२३ सूत्र से नपुंसकलिङ्ग हो जाने पर द्वितीया में नृपसभम् यह शुद्ध रूप होगा ।

५६ व्यक्तवाचां समुच्चारणे १।३।४८ से आत्मनेपद का विधान होकर सम्प्रवदन्ते यह शुद्ध रूप होगा ।

५७ मामनाराध्य विद्याधिगमस्ते न भविष्यति।
५८ इदमत्यन्तमशुद्धं वाक्यम्, एनं वैयाकरणोऽपि न वेत्ति।
५९ खलानां संसर्गात्को न विरिरंसते ?
६० कम्पमानान् वृक्षान् दृष्ट्वा किमिह कम्पसे ? वायुरेतान् कम्पयते।
६१ अहं सावधानतया वारंवारमुवाच, न भवन्तः शृण्वन्ति।
६२ किमति भोजयते भवानस्मान् नाहं लशुनं कदापि पस्पर्श।

---

५७ अनाराध्य के बाद तिष्ठतः पद का अध्याहार करके समानकर्तृकत्व सम्पादित हो जाने पर समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१ और समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७ से ल्यप् करके मामनाराध्य प्रयोग को साधु माना जा सकता है। महाकवियोंने भी ऐसे प्रयोग किये हैं, यथा अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति। मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा॥ रघु० १।७७ अन्यथा समानकर्तृकत्व के अभाव में मदाराधनं विना यह शुद्ध रूप होगा।
५८ एतद् सर्वनाम नपुंसकलिङ्ग वाक्य का परामर्शक है अतः अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः वार्तिक से द्वितीया एकवचन का शुद्ध रूप एनत् होगा।
५९ वि उपसर्ग पूर्व में होने से रम् धातु के व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३ सूत्र से परस्मैपदी हो जाने पर पूर्ववत्सनः से सन्नन्त में शुद्ध रूप विरिरंसति होगा।
६० चलनार्थक कम्प धातु से ण्यन्त में निगरणचलनार्थेभ्यश्च १।३।८७ सूत्र से आत्मनेपद का निषेध होकर परस्मैपद में शुद्ध रूप कम्पयति होगा।
६१ अपने ही द्वारा सावधानीपूर्वक बोले गये वचन परोक्ष नहीं हो सकते, अतः लिट् लकार का प्रयोग अशुद्ध है, शुद्ध रूप अवोचम् या अब्रवम् होगा।
६२ निगरणार्थक ण्यन्त में आत्मनेपद के निषेध और परस्मैपद के विधान करने वाले सूत्र निगरणचलनार्थेभ्यश्च १।३।८७ से परस्मैपद का रूप भोजयति होगा।

६३ व्यापारमिषेण गौरमुखा आर्यावर्तं स्माजग्मुः।
६४ भो बालाः पठत, एवं स्म गुरुरुवाच।
६५ हा धिक्! अपि मातरमताडयत् भवान्?
६६ अहो किं जातु वेश्यामभियास्यत भवान्?
६७ न श्रद्दधे किङ्किल त्वं वेश्यां स्निह्यसि।
६८ यत्त्वं ब्राह्मणः सुरां सेवसे, यच्च शूद्रीमुखं चुम्बसि अन्याय्यं तत्।
६९ चित्रं यच्च वैष्णवो मत्स्यमांसमभुनक्।

अपने ही द्वारा न किया गया लशुन का स्पर्श परोक्ष नहीं हो सकता, अतः लिट् का प्रयोग अशुद्ध है। शुद्ध रूप अस्पृशम् या अस्प्राक्षम् होगा।

६३ स्म अव्यय के योग में लिट् के स्थान पर लट् का प्रयोग होता है, अतः लट् स्मे ३।२।११८ सूत्र से यहाँ लिट् का निषेध होकर लट् का प्रयोग होगा और शुद्ध रूप आगच्छन्ति स्म होगा।

६४ लट् स्मे ३।२।११८ से लिट् लकार का निषेध होकर लट् का रूप होगा। वक्ति स्म या आह स्म शुद्ध रूप होगा।

६५ निन्दा का प्रसङ्ग होने से गर्हायां लडपिजात्वोः ३।३।१४२ सूत्र से सभी लकारों का अपवादस्वरूप लट् होगा ओर ताडयति यह शुद्ध रूप होगा।

६६ गर्हा का प्रसङ्ग होने से गर्हायां लडपिजात्वो: ३।३।१४२ सूत्र से जातु के योग में लट् लकार का रूप अभियाति होगा।

६७ किङ्किलास्त्यर्थेषु लृट् ३।३।१४६ सूत्र से लृट् का रूप स्नेक्ष्यसि होगा।

६८ स्त्रीत्व विवक्षा में जात्यर्थक शूद्र शब्द से शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः २४००–२४०१ वार्तिक से टाप् होकर शूद्रामुखम् यह शुद्ध रूप होगा।

गर्हायाञ्च ३।३।१४९ सूत्र से लिङ् का विधान होकर प्रकृत वाक्य में चुम्बेः यह शुद्ध रूप होगा।

६९ भोजनार्थ में भुज् धातु का प्रयोग होने के कारण यहाँ भुजोऽनवने १।३।६६ सूत्र से आत्मनेपद का विधान होकर चित्रीकरणे च ३।३।१५० सूत्र से लिङ् का रूप भुञ्जीत होगा।

७० हरिभक्तो भूमिस्थोऽपि वासवं हसति।

७१ अध्यापकब्राह्मणाः शिष्यान् पिपाठयिषन्ति।

७२ अनयोरेकः सुरापी, अन्यश्च क्षीरपी।

७३ एष सन्देशहर एव भारहरतामङ्गीकरिष्यति।

---

७० भूमि शब्द के बाद आने वाले स्थ के सकार का अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ८।३।९७ सूत्र से षत्व और ष्टुना ष्टुः ८।४।४१ से ष्टुत्व हो जाने पर भूमिष्ठः यह शुद्ध रूप होगा।

७१ "पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः" २।१।६५ इस सूत्र से "अध्यापक" पद का परनिपात होकर "ब्राह्मणाध्यापकाः" शुद्ध रूप होगा।

७२ "सुरा पीने वाली" और "क्षीर पीने वाली" इन स्त्रीलिङ्ग अर्थों की विवक्षा होने पर एकः और अन्यः के स्थान पर क्रमशः एका और अन्या होगा। गापोष्टक् ३।२।८ से विहित टक् की प्रवृत्ति पिबतेः सुराशीध्वोरिति वाच्यम् १९९० वार्तिक से सुरा और शीधु शब्दों के पूर्व में होने पर ही होती है अतः सुरापी शब्द तो निष्पन्न हो जाता है पर क्षीरपी नहीं। टक् विधायक सूत्र न होने से, ङीप् न होकर टाप् ही होगा और क्षीरपा शुद्ध शब्द होगा।

पुंलिङ्ग की विवक्षा में टक् और क होकर क्रमशः सुरापः और क्षीरपः रूप होंगे।

७३ "हरतेरनुद्यमनेऽच्" ३।२।९ से होने वाले अच् का विधान उद्यमेतर अर्थ में ही होने से, अच् का प्रसङ्ग न होने से, कर्मण्यण् ३।२।१ से अण् होकर भारहारताम् यह शुद्ध रूप होगा।

७४ एष कर्मकरः स च कलहकरः, उभावपि निशाकरं नावलोकयतः।
७५ सज्जनः क्लेशापहो दुर्जनश्च सुखापहो भवति।
७६ जगत्कर्ता नित्योऽनित्यो वेत्यस्य समाहितिः कार्या।
७७ एष मूकस्तृषां द्योतयितुं मुखं न्याददन् पानीयं याचते।
७८ अस्मिन् वृक्षे द्वे फलेऽतितरां संशोभेते।
७९ गुरुं प्रार्थयित्वा गृहं गच्छत।

---

७४ न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ३।२।२३ सूत्र द्वारा ट का निषेध होकर कर्मण्यण् ३।२।१ से अण् होकर "कलहकारः" यह शुद्ध रूप होगा।

७५ अपे क्लेशतमसोः ३।२।५० से होनेवाले ड की प्राप्ति का प्रसङ्ग न होने से 'क्विप्' होकर सुखापहा यह शुद्ध रूप होगा।

७६ "तृजकाभ्यां कर्तरि" २।२।१५ सूत्र द्वारा तृजन्त 'कर्तृ' पद के समास का निषेध होकर जगतः कर्ता यह शुद्ध रूप होगा।" "त्रिभुवनविधाता" आदि प्रयोगों का निर्वाह शेष षष्ठी मानकर हो सकता है।

७७ "नाभ्यस्ताच्छतुः" ७।१।७८ से "नुम्" का निषेध होकर "न्याददत्" यह शुद्ध रूप होगा।

७८ एदन्त द्विवचन फले की "ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्" १।१।११ से प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५ से प्रकृतिभाव हो जानेपर सन्धि के अभाव में "फले अतितरां" यह शुद्ध रूप होगा।

७९ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७ से ल्यप् आदेश होकर "प्रार्थ्य" यह शुद्ध रूप होगा।

८० भो गणक ! अस्य कुक्कुट्यण्डकस्य क्षेत्रफलं दिश ।
८१ लज्जावती नवोढा विलसद्भ्यां दृग्भ्यां वीक्षते ।
८२ अहो ! आनन्दम् यद्राजा प्रजावत्सलतामूरीकरोति ।
८३ एषा नदी उच्छलद्भिरद्भिरिमं नौवृन्दमार्गं रुन्धति स्म ।
८४ स श्वेतैर्मुक्ताफलैर्भ्रातारं स्वसारं च भूषयति ।
८५ हन्त ! कष्टं यद्वयं संस्कृतभाषां परित्यज्य यवनभाषामधीयिमहे ।
८६ भवान् स्वपुत्रस्य नाम कदा ब्रविष्यति ?

---

८० कुक्कुटी शब्द के कुक्कुट्यादिगण में और अण्ड शब्द के अण्डादिगण में आने से कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु ३६३४ वार्तिक से पुंवद्भाव होकर कुक्कुटाण्डकस्य यह शुद्ध रूप होगा ।

८१ स्त्रीलिङ्ग शब्द "दृक्" का विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग ही होगा, अतः उगितश्च ४।१।६ से ङीप् होकर विलसन्तीभ्याम् यह शुद्ध रूप होगा ।

८२ आनन्द शब्द पुंल्लिङ्ग है ("स्यादानन्दथुरानन्दः" अमरकोष १४७) अतः अहो आनन्दः यह शुद्ध रूप होगा ।

८३ विशेष्य के ही अनुरूप अद्भिः (आपः स्त्री भूम्नि अमरकोष २५७) का विशेषण स्त्रीलिङ्ग होगा और शुद्ध रूप उच्छलन्तीभिः होगा। साथ ही रुन्धति के स्थान पर रुणद्धि होगा ।

८४ "अप्तृन्तृच्....." इत्यादि ६।४।११ सूत्र की प्राप्ति न होने से दीर्घ के अभाव में भ्रातरम् यही शुद्ध रूप होगा ।

८५ टित आत्मनेपदानां टेरे ३।४।७९ की प्राप्ति का प्रसंग न होने से, एत्व के अभाव में लिङ् में अधीयाम शुद्ध रूप होगा ।

८६ ब्रुवो वचिः २।४।५३ से 'ब्रू' को वचि आदेश होकर लृट् की विवक्षा में वक्ष्यति यह शुद्ध रूप होगा ।

विभाषा कदाकर्ह्योः ३।३।५ से विकल्प से लट् का ब्रवीति भी शुद्ध होगा ।

८७ त्वया अहिनकुलयोर्वृत्तान्तः समगामि।

८८ एष वीरः शत्रूनाहन्ति, शत्रुपत्न्यश्च स्वमेव शिरो वक्षश्चाघ्नन्ति।

८९ एते बुभुक्षिता विद्यार्थिनः पाकपात्राण्युत्तपन्ति, स तु शीतार्तः स्व पाणिमेवोत्तपति।

९० अग्निसन्तप्तमयोऽपि दहिष्यति।

९१ यद्येवं न दास्यसि चेत्तर्हि राजनियमान्निग्राह्य गृहीष्यामि।

९२ सर्वेऽपि 'गुप्ताशुद्धि प्रदर्शनं क्व मिलति' इति पपृच्छुः।

९३ यः पठेन्नातियत्नेन न स विद्यां लभेत् कचित्।

---

८७ शाश्वत विरोध वाले अहि-नकुल को येषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः २।४।९ सूत्र से एकवद्भाव द्वन्द्व होकर, "अहिनकुलस्य" यह शुद्ध रूप होगा।

८८ आङो यमहनः १।३।२८ और स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् ६१६ से स्वाङ्गकर्मक 'हन्' धातु से आत्मनेपद होकर "आघ्नते" यह शुद्ध रूप होगा।

८९ स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् ६१६ इस वार्तिक से, स्वाङ्गकर्मक, "उत्" उपसृष्ट "तप्" धातु आत्मनेपदी हो जायगी और "उत्तपते" यह शुद्ध रूप होगा।

९० "इट्" की प्राप्ति न होने से "धक्ष्यति" शुद्ध रूप होगा।

९१ लृट् लकार में सम्प्रसारण की प्रसक्ति न होने से ग्रहीष्यामि यह शुद्ध रूप होगा।

९२ ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६ से होने वाले सम्प्रसारण का प्रसङ्ग न होने से पप्रच्छुः यह शुद्ध रूप होगा।

९३ डुलभष् धातु आत्मनेपदी है अतः शुद्ध रूप लभेत होगा।

९४ दातारः स्वं प्राणं वर्ष्मापि च ददन्ति ।

९५ क्लेशितो बाल उच्चै रुरोदिषति ।

९६ विषयी दरिद्राति त्यागिनस्तु न दरिद्रान्ति ।

९७ स तस्य गुणानजीगणत्, मदग्रे च अचीकथत् ।

९८ धन्या गोपकन्या या वन्यापि कृष्णमनः समचुचोरत् ।

९९ शीघ्रं पठनमारभणीयम्, ज्ञानं च लभनीयम् ।

१०० कृष्णे जाते कंसप्रहरिमण्डल असुस्वपत् ।

---

९४ नाभ्यस्ताच्छतुः ७।१।७८ सूत्र से नुम् का निषेध हो जाने पर ददति यह शुद्ध रूप होगा। प्राण शब्द नित्य बहुवचनान्त पुंलिङ्ग (पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः अमरकोश ८८५) है अतः शुद्ध रूप स्वान् प्राणान् होगा ।

९५ रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च १।२।८ सूत्र से सन् को कित् होने गुण की प्रसक्ति के अभाव में रुरुदिषति यह शुद्ध रूप होगा ।

९६ अदभ्यस्तात् ७।१।४ से झ को अत् आदेश हो जाने पर, बहुवचन दरिद्रति यह शुद्ध रूप होगा ।

९७ अचीकथत् प्रयोग अशुद्ध है। अग्लोपी (अक् का लोप करने वाला होने से, अभ्यास के इत्व के प्रसङ्ग के अभाव में अचकथत् यह शुद्ध रूप होगा ।

९८ गुण की प्राप्ति न होने से, दीर्घो लघोः ७।४।९४ सूत्र से अभ्यास चु का चू हो जाने पर समचूचुरत् यह शुद्ध रूप होगा ।

९९ रभेरशब्लिटोः ७।१।६३ से नुम् होकर आरम्भणीयम् और लभेः ७।१।६४ इस सूत्र से नुम् होकर लम्भनीयम् यह शुद्ध रूप होगा ।

१०० णिच् की आवश्यकता न होने से अस्वपत् यह शुद्ध रूप होगा ।

१०१ पञ्जरस्थोऽपि व्याघ्रो देवदत्तं भीषयति, स च तत्कथाख्यानैरपरान् भीषयते ।

१०२ उत्तरस्यां दक्षिणस्यां च ध्रुवो स्तः, पूर्वस्यां पश्चिमस्यां च रवेरुदयास्तौ ।

१०३ अस्मादृशो युष्मादृशं न सिषेविषति ।

१०२ अहं भवन्तं रणाजिरं सनाथयितुमुत्सिषाहयिषामि ।

१०५ क्रीडन्तं बालं दृष्ट्वा माता अहासीत् ।

१०६ बालकः फलानि विहाय मृत्तिकामविभक्षत् ।

---

१०१ भीस्म्योर्हेतुभये १।३।६८ से आत्मनेपद होकर भीषयति के स्थान पर भीषयते होगा और भय के हेतु के अभाव में षुग्विधायक भियो हेतुभये षुक् ७।३।४० की प्राप्ति न होने पर भीषयते के स्थान पर भाययति यह शुद्ध रूप होगा ।

१०२ सर्वनामसंज्ञा के अभाव में, स्याट् की प्राप्ति न होने से पश्चिमायाम् यह शुद्ध रूप होगा । उदयास्तम् अव्यय है, अतः उदयास्तौ न होकर उदयास्तम् ही होगा ।

१०३ पूर्ववत्सनः १ । ३ । ६२ से आत्मनेपद होकर सिषेविषते यह शुद्ध रूप होगा ।

१०४ सः स्विदिस्वदिसहीनां च ८।३।६२ से षत्व का निषेध होकर उत्सिसाहयिषामि यह शुद्ध रूप होगा ।

१०५ ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७।२।५ सूत्र से वृद्धि का निषेध हो जाने पर अहसीत् यह शुद्ध रूप होगा ।

१०६ णिच् अनुपयोगी है, अतः शुद्ध रूप अभक्षत् होगा ।

१०७ जननीदुग्घेन बालस्य कण्ठमार्द्रं बभूव ।

१०८ सुरापानेषु देशेषु ब्राह्मणा न यान्ति ।

१०९ कर्तृगामिनि क्रियापदे आत्मनेपदम् ।

११० सा आर्द्रगोमयेण माषकुम्भवापेण च गृहं भूषयति ।

१११ नन्दप्राङ्गणसंस्थितो हरिरसौ सानन्दमाक्रीडति ।

* इति महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासप्रणीतं गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् *

---

१०७ कण्ठ शब्द पुंलिङ्ग है (कण्ठो गलोऽथ ग्रीवायाम् अमरकोष ६५२) अतः कण्ठ आर्द्रो बभूव शुद्ध रूप होगा ।

१०८ पानं देशे ८।४।९ इस सूत्र से णत्व होकर सुरापाणेषु यह शुद्ध रू[illegible] होगा ।

१०९ कुमति च ८।४।१३ सूत्र से णत्व होकर कर्तृगामिणि यह शुद्ध रू[illegible] होगा । प्रष्ठोऽग्रगामिनि ८।३।९२ सूत्र में पूर्वपद में णत्व के हेतु रे[illegible] के होते हुए भी णत्व नहीं हुआ है, कुछ लोगों के मत से इसी प्र[illegible] कर्तृगामिनि प्रयोग भी शुद्ध है ।

११० पदव्यवायेऽपि ८।४।३८ सूत्र से णत्व का निषेध हो जाने पर मा[illegible] कुम्भवापेन यह शुद्ध रूप होगा ।

१११ आङ् उपसर्ग पूर्व में होने से क्रीड् धातु के क्रीडोऽनुसंपरिभ्य[illegible] १ । ३ । २१ सूत्र से आत्मनेपदी हो जाने पर, शुद्ध रूप आक्री[illegible] होगा ।

केदारनाथ मिश्र एम्० ए०, पीएच्० डी० (अ० व०) कृत
गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् की हिन्दी व्याख्या समाप्त:

अभ्यर्थनम्

श्रीमद्गौडेन्द्रवंशे हरिचरणरजःपूरपूतान्तरात्मा
दुर्गादत्ताभिधानः समजनि सुयशोभासिशोभाविशिष्टः ।
तत्पुत्रः श्रीशपादाम्बुजयुगमधुलिट् तातपादोपसेवी
अम्बादत्ताभिधानः सरुचि रचिवातनू संस्कृताशुद्धिगद्यम् ॥

ससाधुवादेन विजृम्भितानां
कृपाकटाक्षैः समुदञ्चितानाम् ।
लेखस्त्वयं सद्रुचिरोचितानां
स्यादास्पदं विज्ञविलोकितानाम् ॥

दोषज्ञा अपि विद्वांसः स्वीकुर्वन्तु गुणज्ञताम् ।
लेखं मदीयमालोक्य बालबोधविधायकम् ॥

बाराबंकीतिनाम्ना प्रथितजनपदे भारतस्योत्तरस्यां
शाकद्वीपीयविप्रेषु विजनगरेऽभूद्भरद्वाजगोत्रः ।
लक्ष्मीनारायणाख्यः सुविदितमहिमा राजमान्यो मनीषी
तत्पौत्रः काशिवासी विमलमतिरुमाशङ्करात्लब्धदेहः ।
मिश्रः केदारनाथोऽग्रजवरगिरिजाशङ्करानुग्रहीतः
शोधच्छात्रः विनीतः स्मरहरनगरीहिन्दुविद्यालयीयः ।
व्याख्यन्नागौषधीशाम्बरनयनमिते चैत्रिके वैक्रमेऽब्दे
गुप्ताशुद्धीः प्रदर्श्याखिलविबुधमुदे भाषया व्यासलेखम् ।

इति शम्

१०७ जननीदुग्धेन बालस्य कण्ठमार्द्रं बभूव ।

१०८ सुरापानेषु देशेषु ब्राह्मणा न यान्ति ।

१०९ कर्तृगामिनि क्रियापदे आत्मनेपदम् ।

११० सा आर्द्रगोमयेण माषकुम्भवापेण च गृहं भूषयति ।

१११ नन्दप्राङ्गणसंस्थितो हरिरसौ सानन्दमाक्रीडति ।

* इति महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासप्रणीतं गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् *

---

१०७ कण्ठ शब्द पुंलिङ्ग है (कण्ठो गलोऽथ ग्रीवायाम् अमरकोष ६५२) अतः कण्ठ आर्द्रो बभूव शुद्ध रूप होगा ।

१०८ पानं देशे ८।४।६ इस सूत्र से णत्व होकर सुरापाणेषु यह शुद्ध रू[illegible] होगा ।

१०९ कुमति च ८।४।१३ सूत्र से णत्व होकर कर्तृगामिणि यह शुद्ध रू[illegible] होगा । प्रष्ठोऽग्रगामिनि ८।३।९२ सूत्र में पूर्वपद में णत्व के हेतु रे[illegible] के होते हुए भी णत्व नहीं हुआ है, कुछ लोगों के मत से इसी प्रक[illegible] कर्तृगामिनि प्रयोग भी शुद्ध है ।

११० पदव्यवायेऽपि ८।४।३८ सूत्र से णत्व का निषेध हो जाने पर मा[illegible] कुम्भवापेन यह शुद्ध रूप होगा ।

१११ आङ् उपसर्ग पूर्व में होने से क्रीड् धातु के क्रीडोऽनुसंपरिभ्य[illegible] १ । ३ । २१ सूत्र से आत्मनेपदी हो जाने पर, शुद्ध रूप आक्री[illegible] होगा ।

केदारनाथ मिश्र एम्० ए०, पीएच्० डी० (अ० व०) कृत

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् की हिन्दी व्याख्या समाप्त:

अभ्यर्थनम्

श्रीमद्गौडेन्द्रवंशे हरिचरणरजःपूरपूतान्तरात्मा
दुर्गादत्ताभिधानः समजनि सुयशोभासिशोभाविशिष्टः ।
तत्पुत्रः श्रीशपादाम्बुजयुगमधुलिट् तातपादोपसेवी
अम्बादत्ताभिधानः सरुचि रचिवातनू संस्कृताशुद्धिगद्यम् ॥

ससाधुवादेन विजृम्भितानां
कृपाकटाक्षैः समुदञ्चितानाम् ।
लेखस्त्वयं सद्रुचिरोचितानां
स्यादास्पदं विज्ञविलोकितानाम् ॥

दोषज्ञा अपि विद्वांसः स्वीकुर्वन्तु गुणज्ञताम् ।
लेखं मदीयमालोक्य बालबोधविधायकम् ॥

बारावंकीतिनाम्ना प्रथितजनपदे भारतस्योत्तरस्यां
शाकद्वीपीयविप्रेषु विजनगरेऽभूद्भरद्वाजगोत्रः ।
लक्ष्मीनारायणाख्यः सुविदितमहिमा राजमान्यो मनीषी
तत्पौत्रः काशिवासी विमलमतिरुमाशङ्कराल्लब्धदेहः ।
मिश्रः केदारनाथोऽग्रजवरगिरिजाशङ्करानुग्रहीतः
शोधच्छात्रः विनीतः स्मरहरनगरीहिन्दुविद्यालयीयः ।
व्याख्यन्नागौषधीशाम्बरनयनमिते चैत्रिके वैक्रमेऽब्दे
गुप्ताशुद्धीः प्रदर्श्याखिलविबुधमुदे भाषया व्यासलेखम् ।

इति शम्

श्रीसरस्वत्यै नमः

व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्

कर्तृगुप्तम्

व्यामोहं तव छिन्दन्तु भिन्दन्तु दुरितानि च ।
कर्तृगुप्तमिमं श्लोकं ये जानन्ति विचक्षणाः ॥१॥

बालञ्चापि कलाकलापरहितं दोषाकरं यः जडम्
धृत्वा मूर्द्धनि दत्तवान्बहुविधप्रोत्साहनं शङ्करः ।
यः काश्यां निवसन्ननेकविबुधैः संस्तूयते प्रत्यहम्
सोऽयं चन्द्रधरोऽत्र मे गुरुवरो भूयाद्भ्रमोन्मूलकः ॥ १ ॥
व्युत्पत्त्यै छात्रलोकानां कूटपद्यानि भाषया ।
मिश्रः केदारनाथोऽयं व्याख्यातीह गुरुप्रियः ॥ २ ॥

१ भगवान् शङ्कर, कामदेव (या ब्रह्मा) और विष्णु तुम्हारे अज्ञान का नाश करें तथा तुम्हारे पापों को दूर करें। इस श्लोक में कर्तृपद गुप्त है, उसे जो जानते हैं वे निश्चय ही पण्डित हैं।

यहाँ कर्त्ता "व्या" है। उकार ('उकारः शङ्करः प्रोक्तः' एकाक्षरी कोष) ('इकार उच्यते कामः' ए० को०) और अकार ('अकारो वासुदेवः, स्यात्' ए० को०) के दो बार यण् सन्धि होकर मिलने तथा जस् के सकार (रुत्व और यत्व होकर 'लोपः शाकल्यस्य' ८।३।१९ सूत्र से यकार) का लोप होजाने पर 'व्या' यह कर्तृपद निष्पन्न हुआ, जिसका अर्थ है, 'शङ्कर, कामदेव और विष्णु'। इसे खोजने के लिये 'व्यामोहं' को एक शब्द न समझ कर, 'व्या' को "मोहं" से अलग कर के पढ़ना होगा ॥ १ ॥

गौरीनखरसादृश्यश्रद्धया शशिनं दधौ।
इहैव गोप्यते कर्ता वर्षेणापि न लभ्यते ॥२॥
शरदिन्दुकुन्दधवलं नगपतिनिलयं मनो-हरं देवम्।
यैः सुकृतं कृतमनिशं तेषामेव प्रसादयति ॥ ३ ॥
अन्नवस्त्रसुवर्णानि रत्नानि विविधानि च।
ब्राह्मणेभ्यो नदीतीरे ददाति व्रज सत्वरम् ॥ ४ ॥

---

२ शङ्कर ने पार्वती की प्रसन्नता के लिये, उनके पदनख के सदृश बालचन्द्र को, मस्तक पर धारण किया। यहीं कर्तृपद गुप्त है जो वर्ष भर खोजने पर भी नहीं मिलता।

यहाँ कर्तृपद 'इहा' (इः कामः तं हन्ति इति 'इहा' शिवः) अर्थात् 'शिव' है। इसे खोजने के लिये 'इहैव' का विच्छेद 'इह + एव' न समझकर, 'इहा + एव' समझना होगा ॥ २ ॥

३ जिसने निरन्तर पुण्य किये हैं उसी का मन (अर्थात् केवल वही व्यक्ति) शरत्कालीन चन्द्रभा और कुन्दपुष्प के समान शुभ्र कैलाशवासी भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर पाता है अर्थात् शिवभक्ति किसी पुण्यात्मा को ही मिलती है।

यहाँ कर्तृपद 'मनो' (मनः अर्थात् मन) है। इसे खोजने के लिए 'मनोहरं' को एक पद न समझ कर, दो पद समझना होगा और 'मनो' को 'हरं' से अलग कर पढ़ना होगा ॥ ३ ॥

४ वह धनी ब्राह्मण नदी के तट पर अन्न, वस्त्र, सुवर्ण और विविध रत्न दान कर रहा है, तुम भी शीघ्र जाओ।

यहाँ कर्तृपद 'ब्राह्मणेभ्यो' (ब्राह्मणश्चासाविभ्यश्च, अथवा ब्राह्मणेषु इभ्यः (धनी), "इभ्य आढ्यो धनी स्वामी" अमरकोष १०५५) अर्थात् ब्राह्मण धनिक है। इसे खोजने के लिये 'ब्राह्मणेभ्यो' पद को चतुर्थ्यन्त न समझकर, समस्त पद, समझना चाहिये ॥ ४ ॥

राक्षसेभ्यः सुतां हृत्वा जनकस्य पुरीं ययौ ।
अत्र कर्तृपदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥ ५ ॥

प्रमोदं जनयत्येव सदा-रा गृहमेधिनः ।
यदि धर्मश्च कामश्च भवेतां संगताविमौ ॥ ६ ॥

कर्मगुप्तम्

सुभग ! तवाननपङ्कजदर्शनसञ्जातनिर्भरप्रीतेः ।
शमयति कुर्वन् दिवसः पुण्यवतः कस्य रमणीयः ?? ॥ ७ ॥

---

५ राक्षसों का स्वामी रावण, जनकसुता सीता का अपहरण कर, अपनी लङ्कापुरी को गया । यहाँ कर्तृपद गुप्त है, उसे जानने वाला निश्चय ही पण्डित है ।

यहाँ कर्तृपद 'राक्षसेभ्यः' (राक्षसानां इभ्यः (स्वामी), 'इभ्य आढ्ययो धनी स्वामी' अ० को० १०५५) अर्थात् राक्षसों का स्वामी रावण है । इसे खोजने के लिये राक्षसेभ्यः पद को चतुर्थ्यन्त न समझकर, समस्त समझना होगा ॥ ५ ॥

६ यदि 'धर्म' और 'काम' में समन्वय हो, तो 'अर्थ' भी गृहस्थों को सदैव सुख देता ही है ।

यहाँ कर्तृपद 'रा' (=धन "अर्थ' रै विभवा अपि" अमरकोष ६७६) है । इसे खोजने के लिये 'सदारा' को 'सदा' और 'रा' पदों को पृथक् कर के पढ़ना चाहिये ॥ ६ ॥

७ हे सुन्दर ! यह रमणीय दिवस, तुम्हारे मुखकमल का दर्शन कर प्रसन्न होने वाले किस पुण्यात्मा को सुखी करता हुआ व्यतीत होता है ?

यहाँ कर्मवाचक पद 'शम्' (शंसुखं ए० को०) गुप्त है । शम् को कुर्वन् से और दिवसः को अयति से सम्बद्ध करने पर यह स्पष्ट हो जाता है ॥७॥

एहि हे रमणि ! पश्य कौतुकं धूलिधूसरतनुं दिगम्बरम्।
सापि तद्वदनपङ्कजं पपौ भ्रातरुक्तमपि किं न बुद्धयते ?? ॥ ८ ॥
शीकरासारसंवाहिसरोजवनमारुतः ।
प्रक्षोभयति पान्थस्त्रीनिःश्वासैरिव मांसलः ॥ ९ ॥

करणगुप्तम्

पूतिपंकमयेऽत्यर्थं कासारे दुःखिता अमी।
दुर्वारा मानसं हंसा गमिष्यन्ति घनागमे ॥ १० ॥

---

८ किसी के 'हे सुन्दरि ! इधर आओ, और भूमि पर खेलते हुए इस धूल धूसरित शिशु को देखो,' यह कहने पर, उस सुन्दरी ने उस बच्चे के मुखकमल को चूम लिया। यहाँ कर्मपद का कथन कर दिया गया है फिर भी आप उसे क्यों नहीं समझ पाते ?

यहाँ गुप्त कर्मवाचक पद 'तुकं' (शिशु को) है। इसको समझने के लिये कौतुकं पद को कुतूहलार्थवाचक एक पद न मानकर, "कौ" (भूमि पर) और 'तुकम्' (शिशु को) पृथक् पृथक् पढ़ना चाहिये ॥८॥

९ पथिकों की विरहाकुल पत्नियों के निःश्वासों से पुष्ट हुआ सा यह प्रबल समीर (जलकणों की धारा वहन करने वाले अर्थात्) जल से लबाबब भरे तालाब को क्षुभित कर रहा है।

यहाँ गुप्त कर्मवाचक पद 'सरो' (तालाब को, 'कासारः सरसी सरः' अ० को० २८२) है। शीकरासारसंवाहि को कर्मवाचक पद सरो का विशेषण और जवनमारुतः को प्रक्षोभयति क्रिया का कर्तृपद समझकर इसे खोजा जा सकता है ॥ ९ ॥

१० वर्षाकाल आने पर ये हंस, गन्दे और कीचड़मय तालाव के कलुषित जल से अत्यधिक खिन्न होकर, मानसरोवर को चले जायँगे।

यहाँ गुप्त करणवाचक पद दुर्वारा (=कलुषितवारिणा आपः स्त्री. भूम्नि वार्वारि अ० को० २५७) अर्थात् कलुषित जल से है। दुर्वारा

सम्प्रदानगुप्तम्

अम्भोरुहमये स्नात्वा वापीपयसि कामिनी।
ददाति भक्तिसम्पन्ना पुत्रसौभाग्यकाम्यया ॥ ११ ॥

अपादानगुप्तम्

शिलीमुखैस्त्वया वीर! दुर्वारैर्निर्जितो रिपुः।
बिभेत्यन्तमलिनो वनेऽपि कुसुमाकुले ॥ १२ ॥

पद को हंसा के विशेषण अत्यर्थं दुःखिताः से सम्बद्ध करने पर यह स्पष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

११ यह भक्त स्त्री वापी के जल में स्नान कर, पुत्र और सौभाग्य की कामना से कामदेव को कमल पुष्प चढ़ा रही है।

यहाँ अये (=कामदेव के लिए, इकार उच्यते कामः ५० को०) यह पद सम्प्रदान है। इ (=कामदेव) शब्द से घेर्ङिति ७।३।१११से गुण होकर चतुर्थी एक वचन में अये यह रूप निष्पन होता है। अम्भोरुहमये को वापीपयसि का विशेषण भूत एक पद न मानकर अम्भोरुह (=कमलम्) और अये (कामदेवाय, ददाति) यह पदच्छेद कर, अम्भोरुहम् को द्वितीयान्त और अये को चतुर्थ्यन्त समझा जाय तो सम्प्रदान स्पष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

१२ हे वीर! तुम्हारे दुःसह शिलीमुखों (= बाणों) से पराजित शत्रु, पुष्पबहुल वन में भी, शिलीमुखों (= भ्रमरों) से (नामसाम्य के कारण) भयभीत होता है।

यहाँ अलिनो अपादान गुप्त है। अत्यन्तमलिनो, रिपुः का विशेषण नहीं है वरन् अत्यन्तम्, बिभेति क्रिया का विशेषण है और अलिनो (= अलि से) भयहेतुरूप अपादान (भीत्रार्थानां भयहेतुः १।४।२५)

सम्बन्धगुप्तम्

भानुर्वै जायते लक्ष्म्या सरस्वत्याथवा मता।
अत्र षष्ठीपदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः॥ १३॥
प्राप्तमदा मधुमासः प्रबला रुक् प्रियतमोऽपि दूरस्थः।
असती सन्निहितेयं संहृतशीला सखी नियतम्॥ १४॥

---

१३ अभीष्ट तेज, मनुष्य को लक्ष्मी (सम्पत्ति) अथवा सरस्वती (विद्या) से प्राप्त होता है। यहाँ षष्ठी पद गुप्त है, उसे जो जानते हैं, वे निश्चय ही पण्डित हैं।

यहाँ नुः (= नरस्य, पुरुषाः पूरुषा नरः अ० को० ५६४) षष्ठी पद है। पुरुषवाचक ऋदन्त नृ शब्द से ऋत उत् ६।१।१११ से उत्व होकर, षष्ठी एकवचन में नुः यह रूप निष्पन्न होता है। भानुः को एक पद न समझ कर नुः (= नरस्य) मता (= अभीष्टा) भा (= शोभा) लक्ष्म्या (= श्रिया) अथवा सरस्वत्या (= विद्यया) जायते (= भवति) इस प्रकार अन्वय करने पर नुः में गुप्त षष्ठी स्पष्ट हो जाती है॥ १३॥

१४ चन्द्रमा का मधु (चाँदनी) बरस रहा है, मेरी कामपीड़ा प्रबल है, पति भी दूर है, और मेरी समीपस्थ यह सखी निश्चय ही आचरणहीन तथा कुलटा है (अतः विवश होकर मुझे उपपति का आश्रय लेना ही होगा)।

यहाँ 'मासः' गुप्त षष्ठीपद है। यह चन्द्रमावाचक 'मास्' शब्द का षष्ठी एकवचन का रूप है। उत्पलिनी के अनुसार चन्द्रमा के लिये (मिमीते आनन्दमिति माः) मास् शब्द का प्रयोग बुधसम्मत है, मास् शब्दः केवलोऽपीह संमतो बहुदृश्वनाम्॥१४॥

अधिकरणगुप्तम्

विपद्यमानता सिद्धा सर्वस्यैव निरूष्मणः ।
यथात्र भस्म पद्भ्यां च निर्वाणं हन्त्ययं जनः ॥ १५ ॥

सम्बोधनगुप्तम्

पिवतस्ते शरावेण वारि कह्लारशीतलम् ।
केनेमौ दुर्विदग्धेन हृदये सन्निरोपितौ ?? १६ ॥
बटवृक्षो महानेष मार्गमावृत्य तिष्ठति ।
तावत्त्वया न गन्तव्यं यावन्नान्यत्र गच्छति ॥ १७ ॥

---

१५ आपत्तिकाल में सभी व्यक्तियों का अनादर होता है । बुझी राख को लोग पैरों से कुचलते हैं ।

यहाँ विपदि (= आपत्तिकाल में) अधिकरणगुप्त पद है । विपद्यमानता को एक पद न समझ कर विपदि को सिद्धा क्रिया के कर्तृपद 'अमानता' (= अवहेलना) से पृथक् करके पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

१६ हे हरिण ! सुगन्धित पुष्पों से शीतल जल पीते हुए तुम्हारे हृदय में किस दुष्ट ने ये दो बाण वेध दिये ?

यहाँ एण (= हे हरिण !) यह सम्बोधनपद गुप्त है, जो शरौ और एण को पृथक् पृथक् कर के समझने पर स्पष्ट हो जाता है ॥१६॥

१७ हे बालक (बटो) यह विशालकाय रीछ (ऋक्षो, बरगद का पेड़ नहीं) रास्ता रोके खड़ा है, जब तक यह अन्यत्र न चला जाय, तुम मत जाओ।

यहाँ बटो (हे बालक) यह संबोधनगुप्त पद है, जो बटवृक्षो का का अर्थ बरगद का पेड़ न समझकर बटो और ऋक्षो को पृथक् पृथक् करके समझने से स्पष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

सन्धिगुप्तम्

न मयागोरसाभिज्ञं चेतः कस्मात्प्रकुप्यसि ?
अस्थानरुदितैरेतैरलमालोहितेक्षणे ! ॥ १८ ॥

लिङ्गगुप्तम्

नितान्तस्वच्छहृदयं सखि ! प्रेयान् समागतः ।
त्वां चिरादर्शनप्रीत्या यः समालिङ्ग्य रंस्यते ॥ १९ ॥

क्रियागुप्तम्

प्रातः प्रातः समुत्थाय द्वौ मुनी च कमण्डलू ।
अत्र क्रियापदं वक्तुमवधिर्ब्रह्मणो वयः ॥ २० ॥

---

१८ हे क्रोध से लाल हो रहे नेत्रों वाली सुन्दरि ! मेरा हृदय (मे चेतः) अपराध के रस से परिचित नहीं (आगोरसाभिज्ञं न) है, मैं अपराधी (आगोऽपराधः मन्तुश्च अ० को० ७६२) नहीं हूँ, तुम क्यों क्रुद्ध हो रही हो, व्यर्थ में मत रोओ ।
यहाँ मे + आगोरसाभिज्ञं इस स्थिति में एचोऽयवायावः ६ । १ । ७८ से अय् आदेश होकर मयागोरसाभिज्ञं यह सन्धि घटित रूप निष्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥

१६ हे सखि ! अत्यन्त निर्मल हृदयवाले (नितान्त-स्वच्छहृत्) तुम्हारे यह प्रियतम (अयं प्रेयान्), जो तुम्हें बहुत अधिक दिनों के बाद देखने के कारण उत्पन्न हुए प्रेमातिशय से तुम्हारा आलिङ्गन कर रमण करेंगे, आ गये ।
यहाँ नितान्तस्वच्छहृदयं आपाततः क्रियाविशेषण सा प्रतीत होता है, पर प्रेयान् के विशेषण नितान्तस्वच्छहृत् और सर्वनाम अयं को पद-च्छेद करके पढ़ने से गुप्त लिङ्ग स्पष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

२० प्रातः उठकर दो मुनि कमण्डलु भरते हैं । इस पद्य की क्रिया का पता ब्रह्मा की आयु बीत जाने पर भी नहीं लगाया जा सकता ।

पम्पासरसि रामेण सस्नेहंसविलासया।
सीतया किं कृतं सार्द्धमत्रैवोत्तरमीक्ष्यताम् ॥ २१ ॥
कान्तया कान्तसंयोगे किमकारि नवोढया?
अत्रापि चोत्तरं वक्तुमवधिर्ब्रह्मणो वयः ॥ २२ ॥
पुंस्कोकिलकुलस्यैते नितान्तमधुरारवैः।
सहकारद्रुमा रम्या वसन्ते कामपि श्रियम् ॥ २३ ॥

यहाँ प्रातः (=भरते हैं) यह क्रियापद है। प्रा पूरणे, धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष द्विवचन में प्रातः यह रूप निष्पन्न होता है ॥२०॥

२१ पम्पा सरोवर पर राम ने विलासवती (सविलासया) सीता के साथ स्नेहपूर्वक (सस्नेहं) क्या किया? इसका उत्तर इसी श्लोक में खोजिये।

यहाँ सस्ने (ष्णा शौचे का लिट का रूप) अर्थात् स्नान किया यह उत्तर है। सस्नेहंसविलासया सीतया का पदच्छेद सस्नेहं सविलासया सीतया न करके सस्ने (स्नान किया) हंसविलासया सीतया (हंसगामिनी सीता के साथ) करने से उत्तर मिल जाता है ॥ २१ ॥

२२ प्रियतम से संयोग होने पर नवोढा सुन्दरी ने क्या किया? यहाँ भी उत्तर खोजने में आयु बीत जायगी।

यहाँ अत्रापि (त्रपुष् लज्जायाम् से भाव में लुङ् का रूप) अर्थात् लज्जित हुई, यह उत्तर है। अत्रापि को अत्र और अपि (=यहां अर्थात् इस श्लोक में भी) शब्दों से घटित न मान कर, लजार्थक त्रपुष् धातु का लुङ् का रूप मान लेने से उत्तर मिल जाता है ॥ २२ ॥

२३ वसन्त में इन सुन्दर आम के पेड़ों ने कोकिल समूह की ध्वनि से किसी लोकोत्तर शोभा को धारण किया।

यहाँ नितान्तमधुरारवैः का अर्थ आपाततः अतिमधुर ध्वनियों से प्रतीत होता है और क्रियापद का पता नहीं चलता। नितान्तम (अत्यधिक) अधुः (धारण किया, डुधाञ् धारणपोषणयोः धातु का लुङ् का रूप) और आरवैः (ध्वनियों से) यह पदच्छेद करने से अधुः अर्थात् धारण किया यह क्रियापद मिल जाता है ॥ २३ ॥

बिम्बाकारं सुधाधारं कान्तावदनपङ्कजम् ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं मर्यादा दशवार्षिकी ॥ २४ ॥
राघवस्य शरैर्घोरैर्घोररावणमाहवे ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥ २५ ॥
पामारोगाभिभूतस्य श्लेष्मव्याधिनिपीडित ।
यदि ते जीवितस्येच्छा तदा भोः शीतलं जलम् ॥ २६ ॥

---

२४ बिम्ब के से आकारवाले और अमृत के आश्रय (अधरामृत की निधि), प्रेयसी के मुखकमल का चुम्बन कीजिये । यहाँ क्रियापद गुप्त है, उसे खोज निकालने की अवधि वर्ष भर है ।

इस पद्य में मर्यादा दशवार्षिकी का अर्थ आपाततः दश वर्ष की अवधि प्रतीत होता है और क्रियापद का पता नहीं चलता । दश और वार्षिकी को पदच्छेद करके पढ़ने तथा मर्यादा को वार्षिकी से सम्बद्ध कर देने पर दश (चुम्बस्व, चुम्बन कीजिये) यह क्रियापद मिल जाता है ॥ २४ ॥

२५ हे राघव ! घोर बाणों से भयङ्कर रावण को युद्ध में मार डालिये । इस श्लोक में क्रियापद गुप्त है, उसे जाननेवाला निश्चय ही पण्डित है ।

यहां स्य (लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप) अर्थात् मार डालिये यह क्रिया पद है, जो राघवस्य को षष्ठ्यन्त एक पद न समझ कर राघव ! और स्य यह पदच्छेद करके पढ़ने से मिल जाता है ॥ २५ ॥

२६ हे श्लेष्मा (जुकाम) रोग से पीड़ित रोगी, यदि रोगग्रस्त तुम जीना चाहते हो, तो ठंडा पानी मत पियो ।

आपाततः यहाँ पामारोगाभिभूतस्य ते यदि जीवितस्येच्छा यह अन्वय और पामा रोग से अभिभूत तुम यदि जीना चाहते हो, यह अर्थ प्रतीत होता है तथा क्रियापद का पता नहीं चलता । रोगाभिभूतस्य

कान्तं विना नदीतीरंमदमालोक्य केकिनी ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥ २७ ॥
विराटनगरे रम्ये कीचकादुपकीचकम् ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥ २८ ॥

ते यदि जीवनस्येच्छा (रोगग्रस्त तुम, यदि जीना चाहते हो) यह पदच्छेद करके, पा मा को शीतलं जलं से सम्बद्ध करने पर ठण्डा जल मत पियो (मा पा) यह क्रियापद मिल जाता है ॥ २६ ॥

२७ मयूर की वियोगिनी मयूरी, मेघज्योति देखकर, प्रेमविह्वल होकर, बार-बार कूज रही है। इस श्लोक में क्रियापद गुप्त है, उसे जो जानता है वह निश्चय ही पण्डित है।

नदीतीरंमदमालोक्य पढ़ने से आपाततः नदी के किनारे यह अर्थ प्रतीत होता है और मुख्यक्रिया का पता नहीं चलता। नदीति इरंमदम् आलोक्य यह पदच्छेद करके पढ़ने से इरंमद (मेघज्योतिरिरंमदः, अ० को० ९३) को देखकर (नदीति) बार-बार शब्द करती है या कूजती है, यह अर्थ और कूजती है क्रियापद स्पष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥

२८ सुन्दर नगर में पक्षी एक बाँस से दूसरे बाँस के समीप गया अर्थात् उड़ा। इस श्लोक में क्रिया पद गुप्त है, उसे जो जानता है वह निश्चय ही पण्डित है।

यहाँ विराटनगरे का अर्थ आपाततः विराट नगर में प्रतीत होता है और क्रियापद का पता नहीं चलता, पर विः (पक्षी, विविष्कर-पतत्रयः अ० को० ५५३) आट (गया, उड़ा, अटपटगतौ धातु से लिट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में निष्पन्न रूप) यह पदच्छेद करने से, गया या उड़ा यह क्रिया पद मिल जाता है ॥ २८ ॥

अशुद्धिगुप्तम्

रामं, सीतां, लक्ष्मणं जीविकार्थे विक्रीणीते यो नरस्तं च धिग् धिक्।
अस्मिन् पद्ये योऽपशब्दान्न वेत्ति व्यर्थप्रज्ञं पण्डितं तं च धिग् धिक्॥२९॥

कूटपद्यानि

अम्बरमम्बुनि पत्रमरातिः पीतमहीनगणस्य ददाह।
यस्य वधूस्तनयं गृहमब्जा पातु स वो हरलोचनवह्निः॥ ३० ॥

---

२९ जो व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिये राम, सीता और लक्ष्मण (की प्रतिकृतियों) को वेचता है उसे धिक्कार है, तथा जो इस पद्य में आई अशुद्धियों को नहीं जानता, उस व्यर्थ बुद्धि वाले पण्डित को भी धिक्कार है।

यहाँ 'रामं, सीतां, लक्ष्मणं' प्रयोग अशुद्ध हैं। इवे प्रतिकृतौ ५।३ ९६ से होने वाले कन् का लोप जीविकार्थे चापण्ये ५।३।९९ सूत्र से अपण्यस्थल पर ही होता है, प्रकृत स्थल में पण्यप्रसंग होने से लोप की प्रसक्ति न होगी और शुद्ध प्रयोग 'रामकं सीतकां लक्ष्मणकम्' होंगे॥ २९ ॥

३० जिसका वस्त्र पीला है (यस्य अम्बरं पीतं) जिसका घर जल में है (यस्य गृहम् अम्बुनि), जिसका वाहन सर्पराजों का शत्रु गरुड है (अहीनगणस्य अरातिः यस्य पत्रम्), जिसकी पत्नी लक्ष्मी है (यस्य वधूः अब्जा) और जिसके पुत्र कामदेव को शंकर के तृतीय नेत्र की अग्नि ने भस्म कर दिया था (यस्य तनयं हरलोचनवह्निः ददाह) वह विष्णु आपकी रक्षा करें (स वः पातु)॥ ३० ॥

गौरीक्षणं भूधरजाहिनाथः पत्रं तृतीयं दयितोपवीतम् ।
यस्याम्बरं द्वादशलोचनाख्यः काष्ठा सुतः पातु सदाशिवो वः ॥३१॥
राजन ! कमलपत्राक्ष ! तत्ते भवतु चाक्षयम् ।
आसादयति यद्रूपं करेणुः करणैर्विना ॥ ३२ ॥
विषं भुङ्क्ष्व महाराज ! स्वजनैः परिवारितः ।
विना केन विना नाभ्यां कृष्णाजिनमकण्टकम् ॥ ३३ ॥
द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं, मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः ॥ ३४ ॥

---

३१ जिसका वाहन वृषभ है (यस्य गौः पत्रम् , पत्रं वाहनपक्षयोः अ० को० १३८७) जिसके तीन नेत्र हैं (यस्य तृतीयं ईक्षणम्), पार्वती जिसकी पत्नी हैं (यस्य दयिता भूधरजा), सर्पराज जिसके उपवीत हैं (यस्य उपवीतम् अहिनाथः), दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हैं (यस्य अम्बरं काष्ठा) और षण्मुख कार्तिकेय जिसके पुत्र हैं (यस्य सुतः द्वादशलोचनाख्यः) वह शङ्कर आपकी रक्षा करें (सः सदाशिवः वः पातु) ॥ ३१ ॥

३२ हे कमल के समान नेत्रों वाले राजन् ! क् , र् और ण् से रहित 'करेणुः' शब्द का जो रूप होता है वह अर्थात् (अ+ए+उः=ऐ+उः= आयुः) आपकी आयु, अक्षय हो ॥ ३२ ॥

३३ आपाततः प्रतीयमान अर्थ, हे राजन् ! आप सपरिवार विष खा लीजिये असंगत है, गूढार्थ यह हागा—
हे महाराज ! आप सपरिवार क् रहित (विना केन), ष् रहित (विषं) और नकार द्वय अर्थात् ण् और न रहित (विना नाभ्यां) निष्कण्टक कृष्णाजिन अर्थात् राज्य (कृष्णाजिनम्—क्—ष्—ण्—न्=ऋ+आ+जि+अम्=राज्यम्) भोगिये ॥ ३३ ॥

३४ राजा या किसी धनी व्यक्ति के सामने कोई विद्वान् (कविकण्ठाभरण के अनुसार भट्ट मुक्तिकलश) छहों समासों के नामोद्देश के बहाने अपनी दरिद्रता का वर्णन और उसके दूर करने का अनुरोध कर रहा है ।

कुन्दकुञ्जममुं पश्य सरसीरुहलोचने !
अमुना कुन्दकुञ्जेन सखि ! मे किं प्रयोजनम् ?? ३५ ॥
पानीयं पातुमिच्छामि त्वत्तः कमललोचने ।
यदि दास्यसि न पास्यामि, नो दास्यसि पिबाम्यहम् ॥ ३६ ॥

हम पति-पत्नी दो प्राणी (द्वन्द्वा) हैं, एक गाय और एक बैल भी है (द्विगुरपि चाहं), घर में व्ययका सदा अभाव रहता है, कुछ है हो नहीं तो व्यय क्या हो (मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः) ? इसलिये हे राजन् या हे पुरुष (पुरुष) ! कुछ ऐसा कर दो (तत् कर्म धारय) जिससे मैं धनधान्य सम्पन्न हो जाऊँ (येनाहं स्यां बहुव्रीहिः)। यहाँ द्वन्द्वो द्विगुः, अव्ययीभावः, तत्पुरुष, कर्मधारय और बहुव्रीहिः शब्द, समासों के नाम के सूचक न होकर क्रमशः, युगल (पति-पत्नी), दो गायों या एक गाय एक बैल वाला (पुमान् स्त्रिया १।२।६७ से एकशेष होकर द्विगुः शब्द निष्पन्न हुआ है), व्यय का अभाव, हे पुरुष ! वह कर्म करो, और बहुत धान्य वाला, अर्थों के द्योतक हैं ॥ ३४ ॥

५ हे कमल के समान नेत्रों वाली ! उस कुन्द कुञ्ज को (अमुं कुन्दकुञ्जं) देखो । हे सखि ! 'मु' विहीन (आपाततः प्रतीयमान अर्थ उस) कुन्द-कुञ्ज से मुझे क्या मतलब ? मुझे तो मु सहित कुन्दकुञ्ज अर्थात् मुकुन्द-कुञ्ज की तलाश है ।

यहाँ प्रथम चरण के अमुं शब्द (द्वितीया एकवचन का रूप) का अर्थ है उसको । पर तृतीय चरण बोलने वाली सखी ने उसका अर्थ मु विहीन लगाया, अतः तृतीय चरणस्थ अमुना शब्द का अर्थ उससे न होकर 'मु विहीन से' है; मु सहित कुन्दकुञ्ज मुकुन्दकुञ्ज होता है ॥३५॥

६ हे कमल के से नेत्रों वाली ! मैं तुम्हारे हाथ से जल पीना चाहता हूँ । यदि तुम दोगी (यदि दास्यसि) तो न पीऊँगा और यदि न दोगी (नो दास्यसि) तो पी लूँगा ।

एकोना विंशतिः स्त्रीणां स्नानार्थं सरयूं गता।
विंशतिः पुनरायाता चैको व्याघ्रेण भक्षितः॥ ३७॥
देवराजो मया दृष्टो वारिवारणमस्तके।
भक्षयित्वार्कपर्णानि विषं पीत्वा क्षयं गतः॥ ३८॥

यहाँ दोगी तो न पीऊँगा और न दोगी तो पी लूँगा, यह क
असंगत लगता है। दास्यसि का दासी+असि यह पदच्छेद कर
यदि तुम दासी (शूद्रस्त्री) हो तो मैं तुम्हारे हाथ का जल न पी
और यदि दासी नहीं हो तो पी लूँगा, यह अर्थ करने से असंगति
हो जाती है॥ ३६॥

३७ एक पुरुष (एको ना) और बीस स्त्रियाँ (विंशतिः स्त्रीणां) स्न
करने सरयू नदी को गईं। एक को तो व्याघ्र ने खा लिया, शेष
लौट आईं।

एकोना विंशतिः का अर्थ आपाततः एक कम बीस अ
उन्नीस प्रतीत होता है और उन्नीस स्त्रियों का जाना तथा एक के
द्वारा खा लिये जाने के बाद बीस का लौटना असंगत लगता है।
को पुरुषवाचक नृ शब्द का प्रथमा एकवचन का रूप मानकर एको
यह पदच्छेद कर, एक पुरुष और बीस स्त्रियाँ यह अर्थ करने पर अ
दूर हो जाती है॥ ३७॥

३८ आपाततः प्रतीयमान अर्थ—मैंने पुल पर देवराज इन्द्रको देखा।
के पत्ते खाकर और विष पीकर (विषं पीत्वा) वह नष्ट हो
(क्षयं गतः)।

गूढार्थ—हे देवर! (देवर), मैंने पुल पर बकरे को देखा (
मया दृष्टः)। वह अर्क (धतूर) के पत्ते खाकर और जल पीकर (
पीत्वा, गरले विषमम्भसि च अमरकोश की भानुजी दीक्षितकृत व्या
अपने निवासस्थान को चला गया (क्षयं गतः, क्षयो गेहे च कल्प
हेमः)।

समरे हेमरेखाङ्कं बाणं मुञ्चति राघवे।
स रावणोऽपि मुमुचे मध्ये रीतिधरं शरम॥ ३९॥
अयि सखि शस्तः सखिवत्पतिरिति किं त्वं न जानासि ?
शस्तोऽति मखिवदुपपतिरित्यालि कथं त्वयापि नाबोधि ?? ४०॥

यहाँ देवराजो को इन्द्रवाचक एक शब्द न मान कर देवर और अजः यह पदच्छेद करने तथा विष का अर्थ जल और क्षय का अर्थ घर करने से अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है॥ ३८॥

३९ युद्धस्थल में राम के स्वर्णरेखाङ्कित बाण छोड़ते ही, रावण ने (भी) शरीर छोड़ दिया।

आपाततः यहाँ मध्ये रीतिधरं शरं का अर्थ ऐसा बाण जिसके मध्यभाग में पीतल ('रीतिः स्त्रियां स्यन्दप्रचारयोः। पित्तले लोहकिट्टे च', मेदिनी) लगा हो' होता है, किन्तु अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति मध्ये रीति धरं शरं का अथ (मध्ये री इति वर्ण धरं शरं, अर्थात् शरीरं) मध्य में री अक्षर वाला शर शब्द अर्थात् शरीर करने से होती है॥ ३९॥

४० आपाततः प्रतीयमान अर्थ—

एक सखी अपनी दूसरी सखी से पूछ रही है—हे सखि! जैसे शास्त्रों में मित्र की प्रशंसा ('केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयं' इत्यादि कह कर) की गई है, वैसे ही पति की प्रशंसा भी ('पतिरेव परः स्त्रीणाम्' इत्यादि कहकर) की गई है। क्या तुम्हें यह नहीं मालूम है, (जो तुम पति के विरुद्ध बात कर रही हो) ? दूसरी सखी उत्तर देती हुई पूछती है—हे सखि। जैसे अत्यधिक प्रिय मित्र की प्रशंसा की गई है वैसे ही उपपति या जार की भी प्रशंसा ('सुभगं वदति जनस्तं निजपति-रिति नैष रोचते मह्यं' अर्थात् लोग उसे सुन्दर बताते हैं, पर अपना पति होने के कारण वह मुझे (स्वैरिणी को) अच्छा नहीं लगता, आदि कह कर) की गई है। क्या पति-प्रशंसा की पण्डित होती हुई भी तुम यह नहीं जानती ?

मञ्जुलघौ सम्भावितगुणे क्वचिन्नापदाधारे।
अयि सखि ! तत्रोपपतौ मम चेतो नत्वनीदृशे पत्यौ ॥ ४१ ॥
पतिरतीवधनी सुभगो युवा परविलासवतीषु पराङ्मुखः।
शिशुरलङ्कुरुते भवनं सदा तदपि सा सुदती रुदती कुतः ?? ४२ ॥

गूढार्थ—हे सखि ! क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि पति शब्द के रूप शस् प्रत्यय (द्वितीया बहुवचन) से सखि शब्द के रूपों के समान ही चलते है ? दूसरी सखी उत्तर में पूछती है—हे सखि ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि उपपति शब्द के रूप शस् प्रत्यय (द्वितीया बहुवचन) से अतिसखि शब्द के रूपों के ही समान चलते हैं ॥ ४० ॥

४१ आपाततः प्रतीयमान अर्थ—हे सखि ! मेरा मन तो उपपति में, जो सुन्दर और (मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम् अ० को० १०६७) मेरा अभीष्ट (त्रिष्विष्टेऽल्पेलघुः अ. को. १२३३) है, जिसके गुणों का आदर होता है तथा जो कभी विपत्तिग्रस्त नहीं होता (क्वचिन्नापदाधारे), लगा है, इन गुणों से हीन पति में नहीं।

गूढार्थ—हे सखि ! मेरे मन में उपपति शब्द है, जिसमें पतिः समास एव १।४।८ से होने वाली सुन्दर घि संज्ञा होती है (मञ्जुलघौ), जिसमें घेर्ङिति ७।३।१११ से गुण (अदेङ् गुणः १।१।२) सम्पादित होता है (सम्भावितगुणे), तथा जो तृतीया एकवचन में (क्वचित्) आङो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२० से होने वाले ना पद का विषय बनता है (नापदाधारे), न कि पति शब्द जिसमें यह सब अर्थात् घि संज्ञा, गुण, ना इत्यादि कुछ नहीं होता ॥ ४१ ॥

४२ उसका पति बहुत धनी, सुन्दर (सुभगो), युवा तथा अन्य स्त्रियों की ओर से विमुख है और पुत्र उसके घर की शोभा बढ़ा रहा है, फिर भी वह सुन्दर दाँतों वाली रमणी रोया करती है, क्यों ?

इस क्यों का उत्तर प्रथम चरण का सुभगो शब्द है। पति शास्त्र की मर्यादा के अनुसार केवल विहित नक्षत्रों में ही रमण करता है अतः

मधौ मन्दं मन्दं मरुति शिशिरे वाति रुचिरे
कुलस्त्रीभिः कृष्णे विहरति तथा वृष्णिनिकरे।
उषा योषा तोषाद्वदनमनिरुद्धस्य मिषतः
पुरः पत्युः कामाच्छ्वशुरमियमालिङ्गति सती ॥ ४३ ॥

कामपिपासा शान्त न होने से वह अतृप्त कामिनी रोती रहती है। सुभग शब्द का अर्थ सुन्दर न करके शुभ (सु) नक्षत्रों (भ, नक्षत्रमृक्षं भं तारा, अमरकोष १०४) में ही गमन करने वाला (गः) करने से उत्तर स्पष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥

४३ चैत्र मास है। शीतल, मन्द, सुगन्धित समीर धीरे धीरे बह रहा है। भगवान श्रीकृष्ण और यादव गोपाङ्गनाओं के साथ विहार कर रहे हैं। देशकाल की परिस्थितियों से प्रभावित हो पतिव्रता उषा अपने पति अनिरुद्ध को सामने पा कामाभिभूत हो जाती है (काम—जो उसके पति अनिरुद्ध का पिता अतः उसका श्वसुर है—का आलिङ्गन करने लगती है)।

यहाँ उषा के श्वशुर के आलिङ्गन करने का अर्थ कामविह्वल हो जाना मात्र है। श्वसुर का अर्थ अनिरुद्ध का पिता कामदेव और पति का अर्थ अनिरुद्ध (अनिरुद्ध उषापतिः अमरकोष २९) न कर, पतिव्रता उषा पति के सामने कामासक्त हो श्वशुर का आलिङ्गन करती है, इतना ही अर्थ करने से, पतिव्रता का श्वशुर का आलिङ्गन करना असंगत प्रतीत होता है, यही कूट का सौन्दर्य है ॥ ४३ ॥

नागेन्द्राकाशनेत्रेऽब्दे, गूढार्थस्य प्रकाशिका।
पुरुषोत्तममासीयं, व्याख्या संपूर्णतामगात् ॥

व्युत्पत्तिप्रदर्शनम् की

केदारनाथ मिश्र एम्० ए०, पी एच्० डी० (अ० व०) कृत

गूढार्थप्रकाशिका हिन्दी व्याख्या

सामवतम्

श्री अम्बिका दत्त व्यास जी का रचा "सामवतम्" नाम नाटक दो बार पढ़ा--"पुराणं इत्येव हि साधुसर्वं" ऐसा मानने वाले सज्जन प्रायः मेरे मत पर हँसेंगे, तौभी मेरा मत यही है कि कालिदास रचित "शकुन्तला" से किसी बात में कम नहीं है-कालिदास के समय में भी ऐसे हँसने वाले थे इसीलिये उनको भास, सौमिल्ल, कविपुत्र प्रभृति पुराने नाटककारों का नाम लेकर, लिखना ही पड़ा कि "पुराणं इत्येव न साधु सर्वं, नचऽपि काव्यं नवं इत्यवद्यम्"।

"सामवतम्" की कथावस्तु "शकुन्तला" को सी है दुर्वासा इसमें भी आते हैं और शाप देते हैं। आधुनिक दृष्टि से असंभाव्य वृत्त इसमें भी हैं। यह सब आज काल की वैज्ञानिक दृष्टि को खटकता है। पर श्री अम्बिकादत्त के जीवन काल में यह विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि भारत में आई नहीं थीं। संवत् १९१५ में जन्म हुआ, सं० १९५७ में देहावसान; केवल ४२ वर्ष की अल्पायु पाई; इतने में बहुत काम किया। यदि तीस चालीस वर्ष और जीते, तो निश्चयेन "शिवराज विजय" के ऐसे ऐतिहासिक आख्यानक, तथा नाटक, उत्तमोत्तम संस्कृत में लिखते, जैसे अब हिन्दी मराठी, बँगला आदि भाषाओं में साहित्य सेवी सज्जन लिख रहे हैं।

अस्तु, कथावस्तु जो भी हो, "सामवतम्" की संस्कृत भाषा की उत्कृष्टता में, तथा सब रसों के प्रदर्शन में प्रायः संस्कृत के किसी विद्वान को संदेह न होगा-वैकल्पिक ऐच्छिक रूप से इस नाटक का भी संस्कृत परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में समावेश होना सर्वथा उचित है--

(डा०) भगवान् दास

सौर ३ - भाद्र - २००९ वि०

(१९-८-१९५२ ई०)